

## पात्र-परिचय

### पुरुष

- १ सूत्रधार... नाटकक निर्देशक ।
- २ राजा (भीष्मक)... कुण्डिनपुरक राजा, भक्त, स्वमयीक पिता ।
- ३ स्वमी... युवराज, भीष्मकक पुत्र, श्रीकृष्णक विद्वेषी ।
- ४ स्वमरध... भीष्मकक पुत्र, स्वमीक अनुगामी ।
- ५ कञ्चुकी (नवसागर)... अन्तःपुरक रक्षक वृद्ध राजपुरुष ।
- ६ दीवारिक (कुण्डिनपुरक)... भीष्मकक द्वारपाल ।
- ७ कलहवर्धन... घटक, श्रीकृष्णक विद्वेषी ।
- ८ हरिवल्लभ... घटक, कृष्णभक्त ।
- ९ द्विज... निमन्त्रणपत्र-वाहक ब्राह्मण, दूत ।
- १० श्रीकृष्ण... वासुदेव, भगवान्, नायक ।
- ११ बलदेव... कृष्णक अग्रज, हलधर ।
- १२ उग्रसेन... मथुराक राजा, कृष्णभक्त, कृष्णक मातामहभ्राता ।
- १३ नारद... देवर्षि ।
- १४ दीवारिक... श्रीकृष्णक द्वारपाल ।
- १५ दारुक... श्रीकृष्णक सारथी ।
- १६ वैनतेय ( गहड़ )... वाहन, पक्षिराज ।
- १७ किङ्कुर... श्रीकृष्णक नोकर ।
- १८ ऋष... विदर्भक राजा, कृष्णक परमभक्त ।
- १९ कैशिक... विदर्भक राजा, कृष्णक परमभक्त ।

- २० पुरुष... कथ-कैशिकक सेवक ।  
 २१ चित्राङ्गद... देवदूत ।  
 २२ प्रतीहार... कथ ओ कैशिकक द्वारपाल ।

## स्त्री

- १ नटी... सूत्रधारक पत्नी ।  
 २ देवी... रुक्मिणीक माय, कृष्णक भक्ता ।  
 ३ रुक्मिणी... राजकुमारी, भीष्मकक पुत्री, नायिका ।  
 ४ सुदर्शिता... रुक्मिणीक सखी ।  
 ५ सुशोभना... रुक्मिणीक सखी ।



श्रीः

रमापतिकृतम्

## अथ रुक्मिणी-परिणय<sup>१</sup>-नाटकम्

रङ्गारम्भे कपालं शशधरमुरगं भूषणीकृत्य सद्यः  
 सन्दीप्याग्निं सुनेत्रे, रुचिर-ज्वनिकाऽर्थं प्रदिश्येभ<sup>२</sup>-कृताम् ।  
 नन्दादीनात्मवर्गान् नटन-गतिकलाभीतपाठेषु दक्षान्  
 सन्दिश्याऽऽनन्दपुनः समयतु वुरितं सूत्रधारः शिबो वः ॥१॥

अपि च—

पादाघातप्रकर्षाद् अजतिं वसुमती, नागलोकं कणीन्द्रः<sup>३</sup>,  
 कूर्मो नाऽलं विधत्तुं प्रभवति<sup>४</sup>, गिरवो भगवश्रृङ्गाः पृक्म्पात् ।

### रुक्मिणी-परिणय-नाटक

नृत्यक आरम्भ में खप्पर (सजवशाक लेल कटोरी) ओ साप के तुरत गहना बनाय, (प्राकाशक हेतु) आँखि में आगि पृज्ज्वलित कय, सुन्दर ज्वनिका (पर्दा) क हेतु चर्मा उपस्थित कय ओ नाच-गान में पटु नन्दी भृङ्गी इत्यादि अपनालोकसभके आदेश दय नाटकक सूत्रधारस्वरूप आनन्दमय शिव अर्हालोकनिक विपत्तिके शान्त करय ॥१॥

आओरो—

(महादेवक नाचक काल हुनक) पाएरक आघातक अधिकता सँ पृथ्वी झोलए लगैत अछि, शेषनाग पाताल जाय लगैत अछि, (पृथ्वीधर नागक धारण कयनिहार) कालू पृथ्वी के धारण करवा में समर्थ नहि होइत छथि, भूकम्प सँ पहाड़क चोटीसभ खसए लगैत अछि—एहि तरहें तीतलोकक नाश

१ - हरण - 'क' । २ - प्रविष्टीर्थ - 'ल' । ३ - कणीन्द्रो - 'क' ख । ४ - सपवि च / प्रभवति - 'क' ।



इत्थं दृष्ट्वा त्रिलोकी-विलपमथ सुरैस्तस्तुतः सोऽभिपेकात्  
पीयूषस्याऽभिरक्षन् भुवनमवतु धो धूर्जटिः सुपुष्पः ॥२॥

नाम्दीपद्यानुसारेण गीतमपि नाट्यगणे :—

[गीतसंख्या - १]

नटराज हरा, नटराज हरा ।  
डमरु - पिनाक - त्रिधूल-धरा ॥१॥  
विमल कपाल मुकुट सिर रजित  
तिलक मनोहर रजनिकरा ।  
कुण्डलि कुण्डले मण्डित श्रुतिगुण  
नयन अनल फणिहार गरा ॥२॥  
देव जमनिका विपुल गजाजित  
नन्दी नन्दी-पाठ करा ।  
रङ्ग मृदङ्ग वज्रावधि भीरव  
पाँचे ववने शिव सूत्रधरा ॥३॥

(पुल्य) होइत देखि देवतालोकनि हुनक (महादेवक) स्तुति कयलनि । ताहि  
हो पुतना महादेव अमृतक वर्षा हो संसारक रक्षा करैत अहाँलोकनिक रक्षा  
करय ॥३॥

नाम्दी-पद्यक अनुसारें गीतो नाट्यग मे—[गीतसं०—१]

१—नटराज हरा = नाट्यक वेत्ता ओ प्रदर्शक मे सर्वप्रधान हर (महादेव) ।  
पिनाक = शिवक धनुष । कपाल = मनुष्यक खण्डक । रजित = शोभित ।  
रजनिकरा = चन्द्रमा । कुण्डलि = सापक कुण्डल हो दुतू कान शोभित । नयन  
अनल = आँखि मे अग्नि । फणिहार = सापक माला ॥

२—जमनिका = यवनिका = परदा । विपुल गजाजित = विस्तृत हाथीक  
चर्म । नन्दी = महादेवक प्रधान सेवक । नन्दी-पाठ = नाटकक आरम्भक  
मंगल पद्य नाम्दी । रङ्ग = मञ्च पर । पाँचे ववने = पञ्चमुख भय महादेव  
इत्थं नाटकक सञ्चालक सूत्रधार बनल छथि ॥

ताल धरधि वेताल<sup>१</sup>, विदूषक  
नारद, योगिनि गानपरा ।  
खण्डपरशु ताण्डव देखि हरमित  
चण्ड हास कर पुमथ वरा ॥४॥  
प्रदभरे<sup>२</sup> व्याकुल शेष कमठ दुहु  
जतनहुँ धरय न पाव घरा ।  
अतिकम्पित भय बललि रसातल  
लगमग कर गिरि, टूट सिखरा ॥५॥  
कर देखै<sup>३</sup> कज्जन फनि उगिलल  
परसल गरल सगर नगरा ।  
अकमित<sup>४</sup> प्रलय तरासे<sup>५</sup> चकित सबे  
सुर मुनि दनुज मनुज निकरा ॥६॥  
प्रमदते<sup>६</sup> ससधरे वमल सुधारस  
ते<sup>७</sup> बाँधल जग चर-अचरा ।  
बाधछाले जिधि वृषभ पड़ाओल  
ते<sup>८</sup> पुनु चिकल भेल इसरा ॥७॥

१—वेताल = शिवक एक गण । विदूषक = नाटकक एक हास्योत्पादक पात्र  
नारद वनैत छथि । योगिनी = दुर्गाक सहचरी अष्टयोगिनी । खण्डपरशु =  
महादेवक ताण्डव = नृत्य । चण्ड = प्रचण्ड । पुमथ = महादेवक एक गण ।

४—प्रदभरे = पाएरक भार हो । शेष = शेषनाग । कमठ = काछ (पृथ्वीके  
शेषनाग ओ शेषनागके काछ धारण कथने छथि ।) गिरि = पहाड़ ।

५—कर देखै = हाथ मे कगनाक रूप मे पहिरितहि । फनि = सर्प ।  
गरल = विष । अकमित = अकस्मिक । तरासे चकित = डर हो  
विस्मित । सुर मुनि = देवता मुनि दैत्य ओ मनुष्यक समूह ।

६—ससधरे = चन्द्रमा । वमल = उगिललनि । सुधारस = अमृत । बाध-  
छाले = बाधक छाल अमृत पड़ल हो जीविकय । वृषभ = वसुधा के ।  
पड़ाओल = बेलओलक । इसरा = ईश्वर महादेव ।

१—वेताल = कछ । २—अकमित = धक्का ।



हुतवह पवन कुवेर पुरन्दर  
वरुण विरञ्चिच विविध अमरा ।  
अवह नाट परिछेद करिअ भव !  
पुनु पुन मांगय जोरि करा ॥७॥  
प्रणत रमापति तुअ पद किङ्कुर  
शङ्कुर सुनिअ विनति हमरा ।  
गिरिजा सहित सकल अघ दुरि कय  
परसन भय दिअ अभय बरा ॥८॥

अपि च—

( गीत संख्या -- २ )

जय जय त्रिभुवन - तारिणि देवि । सभे अभिमत पुर तुअ पद सेवि ॥  
जूटक बांधि जटा घर एक । तीनि नयन लोहित अतिरेक ॥  
सिर सोभे अनुपम पञ्च-कपाल । ससधर तिलक विराजित भाल ॥  
विकट दसन अति रसन अधीर । फणिमय भूषण खरब सरीर ॥  
खरग काति घर दहिना हाव । वामा इन्दीवर नर - माथ ॥  
नव योवन उर पर मुण्डमाल । लम्बोदरि परिहृत बघछाल ॥

७— हुतवह = अग्नि । पवन = वायु । पुरन्दर - इन्द्र । विरञ्चिच = ब्रह्मा ।  
अमरा - देवगण । नाट परिछेद - नाट्यक समाप्ति । भव - महादेव ।  
८— प्रणत - नतमस्तक । किङ्कुर = शवक । अघ = पाप । परसन = प्रसन्न ।

आओरो — गीत संख्या - २

त्रिभुवन-तारिणि = सीतु लोकक उद्धार कयनिहारि । अभिमत पुर =  
अभिलषित पुरैत छेक । जूटक = जुट्टी, समेटल केश । लोहित = लाल ।  
अतिरेक = अतिशय । पञ्च कपाल = माथ पर पाँच गोठ खप्पर (कपाल-  
माला) । ससधर तिलक = चन्द्रमालपी तिलक । विराजित = शोभित ।  
भाल = कपाद पर । दसन = दाँत । रसन = जीह । अधीर = चञ्चल ।  
फणिमय = सापक । खरग काति = तहआरि ओ काता । इन्दीवर नरमाथ =  
नीलकमल ओ नरमुण्ड । उर = छाती । लम्बोदरि = नमदल पेटवाली ।

बहु दिश सतत फेर कर सोय । चित्तिचय बास हास<sup>१</sup> अति घोर ॥  
प्रणत रमापति कह जग जोहि । शबवाहिनि दाहिनि रहु मोहि ॥

अपि च—

( गीत संख्या -- ३ )

प्रणमजो भगवति पद अरविन्द ।  
मानम हमर करिअ मानन्द ॥  
जइअओ सतत तुअ भगति - विहीन ।  
तइअओ न उचित रहिअ हमे दीन ॥  
जजो कर तनय सहस अपराध ।  
न कर जननि परिवालन - बाध ॥  
यदि तेजिअ मोहि परसुत जानि ।  
जगजननी पद होएत<sup>२</sup> हानि ॥  
अञ्जलि बांधि निवेदिअ तोहि ।  
हर - नेहिनि ! परसनि रहु मोहि ॥  
तुअ पद प्रणत रमापति भान ।  
पातक<sup>३</sup> हरिअ करिअ बरदान ॥

(नान्द्यन्ते सूत्रधारः)

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण । भो भोश्चाराग्रसराः ! आदिष्टोस्मि निखि-

फेर = गिदड़ । चित्तिचय = चित्ताक समुदाय मे, इमशान मे । शबवाहिनि =  
मृतकक वाहनवाली । दाहिनि = अनुकूल ।

आओरो — गीत संख्या - ३

पद अरविन्द = चरण कमल । तुअ भगति विहीन = अहाँक भक्ति मैं  
रहित । तनय = पुत्र । सहस = हजार । पारिपालन बाध = पालव नहि छोड़ेंछ ।  
परसुत = आनक पुत्र । हर नेहिनि = शिवक गृहिणी । पातक = पाप ।  
(नान्दीक अन्तमे सूत्रधार प्रवेश करैत छथि)

सूत्रधार—अधिक विस्तारक प्रयोजन नहि । हे हे अग्रगामीलोकनि ! आदेश

१ — हाल — 'ख' । २ — तएह — 'ख' । ३ — पात्र हेरिअ — 'क' ।



लघुपालसङ्घली - निर्मलकिरीटनिवह-सम्माजित-पवङ्गद्वारविन्द-  
परीगेण प्रोद्गड-दोर्दण्डनलग्न-प्रचण्डमण्डलाग्रखण्ड-खण्डीकृतऽ-  
क्षेपद्विपन्नमण्डलेन समुच्छ्रिताऽति-वितत-यवन-वलारव-विलुप्त-  
मैथिलपदवी-प्रवर्त्तिक-प्रताप-दयदहत-ज्वालावली-समुद्भूत-  
दिम्बलयेन नानादेशोपगत-सकलाधिबृन्दाभिलाष-परिपूरणक-  
सुरद्र-भावतारेण महाराज-श्री श्री श्रीमान् नरेन्द्रसिंह-देवदेव-  
यथा भगवत्याः श्रीकमलेश्वरीः स्नानवात्रा प्रसङ्गे पु सम्प्राप्तान्  
अतिदूरवर्त्तिनोऽपि महाजनान् विविधाविधा-विलासिनी-कम-  
नीयकण्ठाभरण-सद्गान् अस्मत्सदोवस्थितोऽश्च विद्वज्जनान्  
अभिनन्दयितुं कस्यापि नूतनरूपकस्याभिनयमाचरत्येति ।  
तच्च विना प्रेयस्या स्मर्तुं नपि न शक्नोमि किं पुनरभिनयितुम् ।  
अतस्तामेवाऽऽहूय अनुचिन्तयामि तदिति । (परिक्रम्य नेपथ्या-

पक्षोने छी—सकल राजवर्गक स्वच्छ मुकुट-समूहक द्वारा पोछल गेल  
छनि दून् चरणकमलक पराग जनिकर, प्रचण्ड बाँहि रूपी दण्ड मे  
लागल प्रचण्ड मण्डलाग्र (आगूभाग मे गोलाकार लिबल) तबआरि  
सँ काटल गेल समस्त शत्रुवर्ग जनिका सँ, समृद्धिशाली अतिविस्तृत  
मुसलमानी सेनारूपी वन मे लुप्त भेल मैथिलपदवी के फेरसँ चला-  
बयवाला प्रतापरूपी दावागि (वनक आगि) क ज्वालाक समूह सँ  
अत्यन्त प्रकाशित छन्हि दिवाक ओर-छोर जनिका द्वारा, अनेक देश  
सँ आयल सकल याचक-समूहक अभिलाषा के पूर्णकरबा मे कल्पवृक्ष  
स्वरूप, महाराज श्री श्री श्रीमान् नरेन्द्र सिंह देवदेवक द्वारा—जे  
भगवती श्रीकमलेश्वरीक (कमला नदीक) स्नानप्रयुक्त नेलाक अवसर  
पर अत्यन्त दूरहु सँ आयल महान् व्यक्तिसभक, अनेक विद्यारूपी  
विलासवतीक सुन्दर कण्ठक गहना सद्गान तथा हमर सभा मे रहनि-  
हारो विद्वानलोकनिक अभिनयन करबाक लेल कोनो नवीन नाटकक  
अभिनय करहु । आ से विना प्रियाक सोचियो ने सकैत छी आ

मिमुलमवलोक्य सबहुमानम्) प्रिये ! इतस्तावदायातु  
भवती ।

नटी—(प्रविश्य) वन्दामि पठमं अञ्जउत्त, अद्य आपनेतु मं अणुगहं कदुअ  
अञ्जउत्तो, केण उण कज्ज-विसेसेण सुमरिदहिअ अञ्जउत्तेण ? [बन्धे  
पृथमम् आर्यपुत्रम् । अद्य आज्ञापयतु माम् अनुगहं कृत्वाऽऽर्यपुत्रः, केन  
पुनः कार्यविशेषेण स्मृतास्मि आर्यपुत्रेण ?]

सूत्रधारा—प्रिये ! जानात्येष भवती,

अस्ति श्रीराघवेन्द्रक्षितिर्भरणसूतो मैथिलानामधीशो

दाने कल्पद्रुमामः प्रसत-रिपुबलध्वान्तविध्वंसनायकः ।

कीर्त्या निर्जित्य चन्द्रं धवलितभुवनो भर्गपादारविन्द-

द्वन्द्वन्यासक्तचेता नृपकुलतिलकः श्रीनरेन्द्रादि-सिंहः ॥३॥

तेन च नव्यरूपकाभिनयाय नियुक्तोऽस्मि, तदनुस्मरणायाऽऽचरणाय च ।

अभिनय कतय सँ कय सकय । अतः हुनके बजाय तकुर परामर्श  
करैत छी । (टहल नेपथ्य दिस देखि अतिआदरपूर्वक) प्रिये !  
कनेक एम्हर आउ अहाँ ।

नटी—(प्रवेश कय) पहिने आर्यपुत्रके प्रणाम करैत छी । तखन कृपा कय  
आर्यपुत्र हमरा आशा देख् जे कोन विशेष काजक हेतु आर्यपुत्र स्मरण  
कमलनि अछि ?

सूत्र०—प्रिये ! अहाँ जनितहि छी,

राजा राघव सिंहक पुत्र, मैथिलसभक अधिपति (राजा), दान  
करबा मे कल्पवृक्षक समान, विस्तृत शत्रुक बलरूपी अन्धकारक नाश  
करबा मे सूर्यस्वरूप, यद्य सँ चन्द्रमाके जीति संसारके उज्जर वन-  
ओनिहार, धिक्क चरणकमल-द्वयमे वित्तके लगओनिहार तथा राजा-  
लोकनि मे श्रेष्ठ श्रीनरेन्द्र सिंह छथि ॥३॥

हुनका द्वारा नवीन नाटकक अभिनय करबा मे नियुक्त छी । तकर  
पुनः स्मरणकरयबाक लेल ओ तदनुसार तैयार होयबाक लेल (यज्जओने  
छी) ।



नटी—एदेग<sup>१</sup> अज्जउत्तस्स दंसणेण सत्पसाद-विविध-वञ्जोपणासेण<sup>२</sup> अ भीमस-णरवड-दुहिआ रुप्पिणी व्व भअवदो सिरिकण्हस्स दंसण-वञ्ज संविहाणेणाह<sup>३</sup> हिदहिअआ संवुत्तम्हि । तदोअ<sup>४</sup> किम्पि ण सुमरिदुं वहुवामि । [एतेन आर्यापुत्रस्य दर्शनेन सप्रसाद-विविध-वचनोपन्यासेन च भीष्मनरपति-दुहिता रुक्मिणीव भगवतः श्रीकृष्णस्य दर्शन-वचन-संविधानेन ५हं हृतहृदया संवृत्ताऽस्मि । ततश्च किमपि न स्मर्तुं प्रभवामि ।]

सूत्र०—(क्षणं विचिन्त्य स्मृतिमभिनीय च साऽतिहर्षम्) प्रिये ! प्रायः प्रिय-जन सान्निध्यं<sup>५</sup> सर्वकार्यसाहचर्यमाचरति, यता भवत्या ईदृशेनापि दृष्टान्तोपन्याससहित-वार्त्विघ्यानेन यत् पूर्वं, पल्लीकुल प्रवर्तनैक-

नटी—आर्यापुत्रक एहि दर्शनं सै तथा प्रसन्नतापूर्वकं अनेकं गप्प-सप्प सै भग-वान् श्रीकृष्णक दर्शनं वचनं ओ क्रिया सै राजा भीषमक पुत्री रुक्मिणी जकां हम हरण भेल हृदयवाली भय भेलि छी । ते किछु मोन पड़वा मै समर्थ नहि होइत छी ।

सूत्र०—(किछु काल सोचि मोन पड़वाक अभिनय कय अत्यन्त प्रसन्नता सै) प्रिये ! प्रायः प्रिय व्यक्ति सभोव भेला सै सभ काज मे सहायता होइत छेक कियेक त अहाँ एहू प्रकारक दृष्टान्त युक्त वचनक विन्यास सै (मोन पाड़ि देखहुँ अछि ।) जे पहिने, 'पल्लिवार मूलग्रामक प्रारम्भ करवा मे एकमात्र ब्रह्माक अवतार—छबो अज्ज चारु उवाज्ज प्रारम्भ करवा मे एकमात्र ब्रह्माक अवतार—छबो अज्ज चारु उवाज्ज ओ रहस्य सहित वधीविद्या (वेद) मे पारङ्गत—सद्विद्वत् यशोय-व्रतक आचरण करैत—भृगुमुनिक सदृश—ओमान् भृगुदेवक वंशमे उत्पन्न, कविसमुदायक भूषण श्रीकृष्णपति उपाध्यायक पुत्र, वत्सगोत्रीय श्री-रमापति धर्मा छात्रलोकनिक प्रार्थना पर उत्सुकतावश नवौन 'रुक्मिणी-

१—एविण—'क' 'ख' । २—मल्लनासेज—'ख' । ३—संविहाणेह—क ख । ४—तदोअ—क ख । ५—सान्निध्यमेव कार्य—'ख' ।

कमलासनावतार-साङ्गोपाङ्ग-सरहस्य-मयीनिष्णात - सततसमाचरित-वैतानव्रत-भृगुमुनिप्ररूप-श्रीमद्भृगुदेववंशोद्भवेन कविकुलालङ्कार-श्रीकृष्णपरशुपाध्याय तनूजन्मना वत्सगोत्रेण श्रीमद्रमापतिधर्माणा छात्रादिभिरभ्यर्च्यमानेन कतुह्लादभित्तयं रुक्मिणीपरिणयं नाम रूपकं द्रव्योवाभिनिर्माय चिरतरसेवनोपजात-दपावशाद् विविध-नाटका-दिपाठशीलेषु अस्मदादि भारतेष्वन्तेवासिषु समर्पितमासीत्, तदधुना स्मृतवानस्मि ।

नटी—मएवि दाणिं सुमरिदं तं । सअलअण-सलाहणीए तस्सि करस ण अणु-राओ हुविस्सदि । ता सुट्ठ एदं । [मयापि इदानीं स्मृतं तत् । सकल-जन-सलाघनीये तस्मिन् कस्य न अनुरागो भाविष्यति ? तत् सुट्ठ एतत् ।]

सूत्र०—तदाऽस्य भूपाल-निबहावर्तसस्य पूर्वेषां 'गुणपरिचयो' प्रथममाख्यातु भवती ।

नटी—वाडम् ।

[अवहट्ट--गीतिः]

तवक सत्त्थ समुट्ठ णाविअ चन्दवड-सुअ पण्डओ ।

राअ वग्ग समग्ग अक्खिअ पाअ पड्कअ मण्डओ ॥

परिणय नामक रूपक (दृश्यकाव्य) छट दय बनाय बहुत दिनक सेवासौ उत्पन्न श्यावश, अनेक नाटकादिक पाठ कयनिहार अस्मदादि (हमरा-लोकनि) नट ओ शिष्यसभाके समर्पित कयने छलाह - सै एखन मेन पाड़ल अछि ।

नटी—हमरहु एखन से मोन पड़ल । सभाछोकक द्वारा प्रशंसित ओहि नाटक मे ककरा ने अनुराग होयतैक ? ते ई उराम अछि ।

सूत्र०—तखन राजालोकनिमे अलंकार स्वरूप हिनक (नरेन्दसिंहक) पूर्वपुरुष-सत्ताक गुण ओ परिचय पहिने कष्ट अहाँ ।

१—किछिभृगुपुत्रपरिचयो—'ख' ।



जस्स जेट्ठो बूह भइ बड्ठो बूह दमोअर सोअरो ।  
 मच्चलोअ महेस सरिस महेस ठक्कुर णरवरो ॥  
 सब्ब कव्व कलामु<sup>१</sup> पिउणो तीअ तनअ सुहळ्करो ।  
 सत्थ अत्थ समत्थ सअल विपक्ख पक्ख भअङ्करो ॥  
 तमु सुओ पुरिसोत्तमो असु णाम तिहुअण सोहई ।  
 जोअ हीरअ खाणि लुण्ठण कित्ति भूसण<sup>२</sup> मोहई ॥  
 तमु कण्ठिठ वरिठ्ठ-भूवइ धम्म-भूसण सुंदरो ।  
 विण्हु-भत्ति-पराअणो मिहिलाधालित्ति पुरंदरो ॥  
 महिणाह-सीहो तमु सुओ अरितिमिर सण्डण दिणअरो ।  
 दुविअ<sup>३</sup> णरवइ भूवई सिवचरण सरसिअ महुअरो ॥

नटी—अवश्य. अथश्च । [अवहट्ट-भाषा मे गीत]

तर्कशास्त्र<sup>१</sup>-समुद् नाविक चन्द्रपति-सुत पण्डिते ।  
 राजवर्ग समग्र अक्षित<sup>२</sup> पादपञ्चज मण्डिते ॥  
 जेठ जनिके बूढ़ भाए बड़ बुध<sup>३</sup> दामोदर सोदरे ।  
 मर्त्यलोक-महेश<sup>४</sup> सव्श महेस ठाकुर नरवरे<sup>५</sup> ॥  
 सर्व काव्य कला मे निपुणे तनिक तनय<sup>६</sup> शुभङ्कुरे ।  
 शस्त्र अस्त्र समर्थ सकल विपक्ष पक्ष भयङ्कुरे ॥

टिप्पणी--

१—तर्कशास्त्ररूपी समुद् मे खेवैया (महेस ठाकुर) चन्द्रपति ठाकुरक पुत्र ।  
 २—सकल राजा सौ पूजित चरणकमल सौ शोभित । ३—महापण्डित दामोदर  
 ठाकुर । ४—मर्त्यभवतक महादेवक समान । ५—खेठ व्यक्ति । ६—तनिक  
 पुत्र शुभङ्कुर ठाकुर ।

१ - रह - 'क' । २ - कलामु - 'क' 'ख' । ३ - भूषण - 'ख' । ४ -  
 जोअ णरव भूवई - 'क' 'ख' ।

तस्स राहुव सीह देओ महाराअ पअङ्गिओ ।  
 जोअ आहव-कम्म सब्ब अरादि - भूवइ सङ्किओ ॥  
 दाण निन्दिअ बलि - महीवइ, तहा<sup>१</sup> कण्ण - णरेसरो ।  
 सअल दिअवर कम्म तोसिअ जेण सिरि परमेसरो ॥  
 तस्स तिरिल<sup>२</sup> णरेंद सीहो महाराअवरो सुओ ।  
 जोअ भीम समान विवकम अरिभअंकर भुअजुओ ॥  
 रह<sup>३</sup> तुरङ्गम हत्थि<sup>४</sup> जूह समत्थ अत्थहि दप्पिआ ।  
 जोअ खग्न अमित - वग्न समग्न सग्न<sup>५</sup> समप्पिआ ॥

तनिक सुत पुरुषोत्तमे जनिक नाम त्रिभुवन सोभए ।  
 जनिक हीरक-खानि<sup>७</sup> लुण्ठन कीर्त्ति भूषण मोहए ॥  
 तनिक कण्ठिठ वरिठ्ठ-भ पति धर्म भूषण सुन्दरे<sup>८</sup> ।  
 विष्णुभक्ति परायणे मिथिला धरिनि-पुर<sup>९</sup> ॥  
 अश्विनाथ सिंहे तनिक सुत अरितिमिर<sup>१०</sup> खण्डन दिनकरे ।  
 द्वितीय नरपति भूपती सिवचरण सरसिज<sup>११</sup> मधुकरे ॥  
 तनिक राधवसिंह देवे महाराज-पदाङ्किते ।  
 जनिक आहव<sup>१२</sup>-कर्म सवें अराति<sup>१३</sup>-भूपति शङ्किते ॥  
 दान-निन्दित<sup>१४</sup> बलि-महीपति तथा कर्ण-नरेश्वरे<sup>१५</sup> ।  
 सकल द्विजवर<sup>१६</sup> कर्म तोषित जाहि सिरि परमेश्वरे ॥

७—हीराक खान लुटवाक यश । ('आनन्दविजय नाटिका मे 'अहीर जानिक  
 लुट्ठिआ' ।) ८—सुन्दर ठाकुर । ९—मिथिला महीक इन्द्र (राजा) । १०—शत्रु-  
 रूपी अन्धकाक खण्डन करवा मे सूर्य । ११—महादेवक चरणकमलक भो-  
 राखरूप नरपति ठाकुर । १२—युद्ध । १३—सकल शत्रु राजा सभ ।  
 १४—दान सौ राजा बलि के निन्दित कय देल । १५—राजा कर्ण ।  
 १६—ब्रह्माणक सभ कर्म (आचरण) कयथीपरमेश्वर के समुष्ट कयल ।

१ - रस्त - 'ख' । २ - रमण तहाँ - 'ख' । ३ - तिरि - 'ख' । ४ - रेह - 'ख' ।  
 ५ - हाथि - 'ख' । ६ - सगा - 'ख' ।



[\*तर्कशास्त्र - समुद्र - नाविकः चन्द्रपतिसुतः पण्डितः ।  
 राजवर्ग—समग्राचितपादपञ्चज—मण्डितः ।  
 यस्य ज्वेष्ठो वृद्ध-भ्राता बहुबुधो दामोदरः सोदरः ।  
 मत्स्यलोक - महेशसदृशो महेशठक्कुरो नरवरः ॥  
 सर्वकाव्य-कलासु-निपुणो तस्य तनयः शुभङ्कुरः ।  
 शस्त्रास्त्र - समर्थः सकल विपक्षपक्ष भयङ्करः ॥  
 तत्सुतः पुरुषोत्तमो यस्य नाम त्रिभुवने शोभते ।  
 यस्य हीरक-खानि-लुण्ठन-कीर्त्ति-भूषणं मोहयते ॥  
 तत्कनिष्ठो वरिष्ठभूपतिः धर्मभूषणः सुन्दरः ।  
 विष्णुभक्तिपरायणो मिथिलाधरित्री-पुण्डरः ॥  
 महिमायसिहस्तसुतः अस्तिमिर खण्डन-दिनकरः ।  
 द्वितीयो 'नरपति' भूपतिः शिवचरण-सरसिज-मधुकः ॥  
 तस्य राववसिहदेवो महाराज-पदाङ्कितः ।  
 यस्य आह्वय कर्मणा सर्वोराति-भूपतिः शङ्कितः ॥  
 दान-निन्दितो बलिमहीपतिः तथा कर्णनरेश्वरः ।  
 सकल द्विजवर-कर्म-तोषितो येन शोपरमेश्वरः ॥  
 तस्य श्रील तरेन्द्रसिंहो महाराजवरः सुतः ।  
 यस्य भीम-समान-विक्रमः अरिभयङ्कुरो भुजयुगः ॥  
 रथ-तुरङ्ग-हस्तियुगः सगस्तार्थं दपितः ।  
 यस्य खड्गेन अमित्रवर्गः समग्रः स्वर्गः समपितः ॥]  
 (इति पठनीयम् ।)

तनिक श्रील तरेन्द्रसिंहो महाराजवरः सुते ।  
 जनिक भीमसमान विक्रमः अरिभयङ्करः १० भुजयुगे ॥  
 रथ ११ तुरङ्गम हाथि जय, समस्त अर्थहि दपिते १२ ।  
 जमित सग अमित्र १३ वर्ग समग्र स्वर्ग-समपिते ॥

१०—शत्रुके डरायमबला दुतु भुजः । ११—रथ, घोड़ा ओ हाथीन भुण्ड ।

१२—अभिमानि । १३—शत्रुक समूह के स्वर्गमे दय देल ॥

७ - (ई सशक्त धावा किल्लु निम्नरूपे) अपुणें 'क' पुस्तक मे अस्ति, 'ख' मे नहि ।)

सूत्र - प्रिये ! साधु-साधु ! सम्यक् परिचीयते श्रुत्वा एव महाराजः । तस्मात्  
 सहैव मया मयन्तेवासिभिश्च कुशीलवै र्गयितां सम्मगस्य गुणैवः ।  
 नटी - भाद । [मद्रम् ।]  
 (ततः सर्वे गायन्ति)

[गीतसं० - ४]

मैथिल भूति सिंह नरेन्द्र ।  
 जसु परतापे चकित भेल इन्द्र ।  
 खण्डबला कुल मणिमय दीप ।  
 भुजबले जीतल सकल महीप ॥  
 दाने सूरद्रुम नहि तसु तुल ।  
 परजा - पालक वरमक मूल ॥  
 जाचक गन दारिद दुरि भेल ।  
 कीरति धवल दशओ दिस भेल ॥  
 सज्जन मन नव कञ्ज दिनेस ।  
 जसे निन्दित बलि - कर्णनरेश ॥

(ई पढ़बाक बाही ।)

सूत्र०—प्रिये ! बाह, बाह ॥ नीकजकाँ अहाँ एहि महाराजके जनैत छियनि ।  
 तेँ हमरा संगहि ओ हमर क्षिप्र्य नर सभाक हिनक संग गुणसमूह केँ  
 नीक जकाँ पाउ ।

नटी—बेल ।

(तखन सभ केथो गबैत छथि ।)

गीतसं० - ४

भूपति = राजा जसु परतापे = जनिक प्रतापसँ । महीप = राजा ।  
 सूरद्रुम = कल्पवृक्षा तसु तुल = तनिक तुलना मे। जाचक गन = याचक  
 गण, मजदूरहार । दारिद = दरिद्रता । कीरति = कीर्त्ति, यश । धवल



आन नृपतिं महि तनिक समान ।  
सुमति रमावति कर गुणगान ॥

सूत्र०—एवमेतत् । किञ्च सोऽयं नृपो येन,  
यिजित्व शत्रुं सबलं महानुजं<sup>१</sup>  
भ्रष्टाऽपि<sup>२</sup> लब्ध्वा मिथिलापुरी पुनः ।  
प्रमथ्य चैद्यादि-नृपं सहविमणं<sup>३</sup>  
श्रीवासुदेवेन विदर्भाजा<sup>४</sup> यथा ॥४॥

(नेपथ्ये साक्षेपम् :—आग पाप शैलूपाधम ! मयि जीवति धनुषपाणी<sup>५</sup>  
कोऽसौ गोपालाऽपसदा कृष्णो मदभूमिनीं हविमणीं परिणेष्यति, जरा-  
सन्ध-प्रभृतिभिर्महाराधिभिरनुगम्यमानं चैद्यराजं वा विजेष्यते ? शृणु,  
पशूदाहरण-पञ्चपाठक-कुनाट्यप्रवर्तक-चाराणाऽपसदा !

—उज्जर । नव कञ्ज = नवीन कमल (सज्जनक मनस्वी) क हेतु ।  
दिनेस = सूर्य । जसे = यश सौ ॥

सूत्र०—ठीक । आ ई उवेह राजा बिकाह जे—

शत्रु के ओकर छोट भाय ओ सेना समेत जीति हाथ सौ मेलो  
मिथिला नगरी के पुनः प्राप्त कयलनि, जेना श्रीकृष्ण जेविराज  
शिशुपाल के स्वमीक समेत मारि के हविमणी (विदर्भराजक  
पुत्री) के प्राप्त कयलनि ॥४॥

(नेपथ्य में आक्षेप सहित :—अरे पापो अधम नट ! धनुष हाथ में लेने  
हमरा जिवैत के ओ नीच गोपाल कृष्ण हमर बहिन हविमणी सौ विवाह  
कहत अववा जरासन्ध आदि महाराजीलोकनि सौ अनुगत (युक्त) जेविराज  
शिशुपाल के जीतत ? सुनह व्यर्थ जराहरणक रलोक पड़निहार निरिदित  
नाट्यक प्रारम्भ कयनिहार अधम भौट ।

१—स चानुज—'ख' । २—प्रलब्ध—'ख' । ३—जेष—क ख ।

४—पशुपालो—'क' । ५—पशूदाहरण—'ख' ।

एकेनैव जरासुतेन समरे भाङ्गं समासाद्य यो  
गोपालो मधुरां विहाय शरणं प्रत्यक्समुद्रं गतः ।  
सोऽयं सम्प्रति सर्वभूष-निबद्धैर् युक्तं हि चैद्याधिपं  
जित्वा प्राप्स्यति हविमणीमिति कथं मूढ ! प्रतीतं त्वया ॥५॥

सूत्र०—प्रिये ! कथमयं भूभङ्ग भोषणललाटतट-संलग्न-कोपारक्तवदन दुर्निरी-  
क्ष्य-मुखमण्डलः तज्जयन्निव दृष्टिपातेनैव नः<sup>१</sup> सवान् भर्तृदारकी स्वमी  
स्वमद इत्यपि परिभाषया स्वातोऽनुजं भर्तृभूमी स्वमरथादिभिरनुगम्य-  
मान इति एवाऽऽगच्छति । मद्वान्मया वाऽयं सज्जातकोप इवेत्यवग-  
च्छामि । तस्मादस्माकं कृपितस्यास्य पुरतोऽवस्थानमयुक्तमेव ।

(इति निष्क्रान्ती)

॥ इति प्रस्तावना ॥

एसकरे जरासन्ध सौ मुद्द मे हारिके जे गोपाल मधुराके  
छाड़ि पश्चिम समुद्रक शरण मे गेल, से ई एखत सकल राजाक समूह  
सौ युक्त जेविराज शिशुपालके जीति हविमणीके प्राप्त करत—रे मुख !  
एहि बात पर तो कोना बिस्वास कयले ? ॥५॥

सूत्र०—प्रिये ! की ई भौहके टेढ़ कयला सौ डराओत कपारक कात (नीचा) मे  
लागल कोचे लाल आंखिसौ कठिनतापूर्वक देखवाक योग्य मुंहवला,  
देखले जरासन्ध हमरासभ के डैटत जकां युवराज स्वमी स्वमद नामे  
सेहो प्रसिद्ध, स्वमरथ आदि छोट भाय-सभ सौ अनुगत एम्हरहि अवैत  
छथि । हमर बात सौ ई क्रुद्ध भेल सन लगैत छथि ते कोधित हिनक  
सौजांमे हमरालोकनिक रहब ठीक नहि ।

(बहार होइत छथि ।)

॥ इति प्रस्तावना ॥

१—नस्त्यस्मिन्—'ख' ।



## अथ प्रथमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टो स्वमरथादिभ्रातृभिः । रिबूतो स्वमी)

[गीतसं०-५]

रकुमद कुमर बैल परवेश । कोपित वदन भयंकर भेष ॥  
कुटिल<sup>१</sup> भीहू संकुचित ललाट । रण अति निरभय हृदय-कपाट ॥  
बान कमान विराजित हाथ । परिजन सहित सहोदर साथ ॥  
कुण्डल केयुर बलय बिसाल । उर सोम अनुपम मुकुता-माल ॥  
हरि गुनि लोचन कोपे<sup>२</sup> कषाय । बहूत नृपति रह हुनिक सहाय ॥  
तसु दुश्मनि जग के नहि जान । अभिनव गुणति रमावति भान ॥

स्वमी—(“आः पापे” इत्यादि [श्लोकसं० ५ पर्यन्त] पठित्वा) वरत ! स्वमरथ !  
कब गयोसो दुराशयो भरतास्मजः ?

प्रथम अङ्क

(तत्पुन स्वमरथ प्रभृति भायलोकनि सौ चेरल स्वमी पूर्वनिर्दिष्ट रूप से प्रवेश करते लखि ।)

गीतसं०-५

रकुमद कुमर = राजकुमार स्वमद (स्वमी) । परवेश = प्रवेश । कोपित वदन = तमसायल मुँह । कुटिल = टेढ़ा । संकुचित ललाट = धौंकवल वा तनल कपार । अतिनिरभय = अतिशय निर्भीक हृदयस्त्री केवाडवला । परिजन = परिवार । केयुर = बाँहिक सहता । बलय = माठा । उर शोभ = छातीपर शोभित । अनुपम = अकर उपमा नहि हो । मुकुता-माल = सोपोक माला । हरि = कृष्णक नाम । कषाय = नेत्रआ रंगक । नृपति = राजा ।  
स्वमी—{“आः पाप” इत्यादि श्लोकसंख्या ५ तक पढ़ि} बीआ स्वमरथ !  
कतय गेल ओ दुष्ट नट ?

१ - कुचित - 'क' ।

स्वमरथ—अज्ज ! भवसो दंशण-णिमित्तकेण<sup>१</sup> उल्लेख पलाइयो । ता णिवत्ति-  
अदु अज्जो । [आर्य ! भवतो दर्शननिमित्तकेन अश्वं पला-  
यितः । तस्मिन्वर्तताम् आर्यः ।]

स्वमी — (किञ्चिन्नित्युक्त्य) वरत ! अतिविप्रियथावयववेणात् संवद्धिताऽम-  
पौंऽहं सोढुं न शक्नोमि । अतो मद्वचनात्<sup>२</sup> सुतमाज्ञापय यथा  
जटित्वैव मद्रथं सज्जीकृत्य आनयतु अहमप्यस्वागारं गत्वा यावद्  
आयुधान्यादाय समन्युक्तवो भवामि ।

स्वमरथ—(सप्रथममञ्जलि वद्ध्वा) अज्ज, अज्ज ! सम्पदं एदं<sup>३</sup> ण सोहणं<sup>४</sup>  
कस्सवि जाचअ-अणस्स वअणेण विपक्ख-णअरं गदुअ तहाविहेण<sup>५</sup>  
रिउणा समं समलकम्म-समुज्जोओ । ता<sup>६</sup> कोहं संहल्लिअ उअ-  
विसदु अज्जो, तदो मन्तइस्सं । [आर्य आर्य ! साम्प्रतमेतन्म-  
सोभन कस्यापि याचकजनस्य वचनेन विपक्षनगरं गत्वा सथावि-  
धेन रिपुणा समं समरकर्मासमुद्योगः । तत् कोवं संहृत्य उपविश-  
त्वायः तदा मन्त्रयिष्ये ।]

स्वमरथ—आर्य ! आपनेक दर्शनक कारणे एखनहि पड़ाएल । ते आर्य दुरि  
जाउ ।

स्वमी- (कनेक घुरैत) बीआ ! अति अप्रिय बात सुनलासं क्रोध बढ़वाक  
कारण हम सहि नहि मकैत छी । अतः हमर वचन स सारथिके आज्ञा दएह  
जे भटदथ हमर रथके सजाय आनओ हमहू यावत् अस्त्रागार जाय सस्य  
लय कवच पहिरि तमार होइत छी ।

स्वमरथ—(नम्रता सहित कल जोड़ि) आर्य, आर्य ! एखन ई नीक नहि होयत  
जे कोनो भिखमंगाक वचन से धिरोक्षीक नगर जाय ओहन शत्रु क  
संग युद्धक तैयारी करी । ते क्रोध के समेटि आर्य बैसल जाओ,  
तखन परामर्श करय ।

१ - वसणे सेतु केण - 'क', दंशणे सेतु केण - 'ख' । २ - लत 'क', सेनापति (सेत)  
'ख' । ४ - तुहारिकेहण - 'क', तुहारिहेण - 'ख' । ५ - स - 'क',  
'ख' ।



रक्षणी—यथा रोचते वत्साय । (इति समुद्रविश्व) वत्स । श्रूयताम् :—

[गीतसं०—६]

भीषम नृप सुत हमे युवराज ।  
हम सज्जो कञ्जो करत रण काज ॥  
जलने धरिअ हमे करे सरचाप ।  
तहिथने जाते वैरिण काय ॥  
सर सन्धान हम पुनि देखि ।  
रणभूमि छाड्य अस्त्र उपेखि ॥  
सीम अराक्ष नृप भिक्षुपाल ।  
हमर सवक्ष सकल महिपाल ॥  
बुद्ध—विसारद थिक सत्रे भाय ।  
हम जानिअ सब अस्त्र उपाय ॥  
पौषव हमर खुवन सये जान ।  
अभिनव सुमति रमावति भात ॥

रक्षणी—अञ्ज ! एवमेदं, तहावि दाणि जेव विग्रहो ण जुसो जइ सो  
ध्विणी बलकारेण उवाहइस्सदि तसो जहा अञ्जेण विदं तहा

रक्षणी—जे बीवाके नीक लगाय । (देखि) बीआ गुहू :—

गीतसं०—६

भीषम नृपसुत = राजा भीष्मक पुत्र । सज्जो = सौ । रण = युद्ध । सर-  
चाप = बाण ओ धनुष । वारे = वारे । वैरिण = दुश्मन सैन्य ।  
सर सन्धान = बाणक निशाना । उपेखि = उपेक्षा किय । छोड़ि । सीम =  
सीमावर्तक पुत्र । सपक्ष = समान बलबला । महिपाल = राजा । बुद्ध-  
विसारद = युद्ध करवा में कुशल । अभिनव सुमति = नवीन 'सुमति'  
उपाधिवला । (प्राचीन 'सुमति' उपावति छलाह) ।

रक्षणी—आर्ये ! ई पथार्थे अछि, तथापि एखनहि युद्ध ठीक नहि । यदि ओ  
रक्षिणी सौ बलपूर्वक विवाह करत तँ तखन जेना आर्य कहल अछि

१ - य ओ - 'ख' । २ - अमराह—क । ३ - एवमेदं—क ख ।

कदम्ब । अवि<sup>१</sup>अ अज्ज सुदं मए कञ्जुई-मुहावो, पहादे<sup>२</sup> महाराजो  
देवीए कुमारेण वि समं सुविआरिअ सअम्बरुज्जोअं करिस्सदि त्ति ।  
ता अञ्जो वि बीसमिअदु दाव । [आर्य ! एवमेवेदं, तथापि इदा-  
नीमेव विग्रहो न चुक्तो यदि स रक्षिणी<sup>३</sup> बलात्कारेण उवाहविष्यति  
तदा यथा आर्येण वत्तं तथा कर्त्तव्यम् । अणि च अद्य श्रुतं मया  
कञ्जुकीमुखात् यत् प्रभाते महाराजो देव्या कुमारेणापि समं सुवि-  
चार्ये स्वयंवरोद्योगं करिष्यति । तद् आर्योऽपि विश्वाम्यतु तावत् ।]

रक्षणी—अथत्वेदम् को वाञ्छय दोषः ? (इति विश्वामं हाटयति ।)

(ततः प्रविशति राजा)

[गीतसं०—७]

भीषम नृपति देल परवेस ।  
जनि कुण्डनि<sup>४</sup> अवतरल सुरेस ॥  
मणिमय मुकुट विराजित<sup>५</sup> माथ ।  
जनि उदयाचल उगु दिननाथ ॥  
कनक-दण्ड दित—छत्र अमोल ।  
विपल धवल दुइ चामर डोल ॥

तहिना करख । आओरो, आइ हम सुनल अछि कञ्जुकीक मुह<sup>६</sup> जे  
मिनसरखल महाराज देवीक (महाराणीक) संग ओ कुमारोक (अहैक)  
संग नीकजकां विचारि स्वयंवरक उद्योग करताह । ते आर्यो तावत्  
विश्वाम कवल जाओ ।

रक्षणी—एहिना होअओ । एहि मे कोन क्षति ? (विश्वाम करवाक अभिनव  
करै छवि ।)

(तखन राजा प्रवेश करै छवि ।)

गीतसं०—७

नृपति = राजा । कुण्डनि = कुण्डनापुर मे । सुरेस = इन्द्र । दिननाथ =  
सूर्य । कनक दण्ड सित छत्र = सोनाक डंडा सँ युक्त उज्जर छता ।

१ - विशा अव - क; वि अय - ख । २ - पहादे - क ख । ३ - बाल - ख ।

४ - कुण्डलि - क । ५ - चिभूजित - ख ।



परजापति सस परजापाल ।  
तस कर देव निखिल<sup>१</sup> भूपाल ॥  
वैरविनाश किनास समान ।  
ससुत करथि छोडस महाबान ॥  
हरिपदाङ्गुज धरथि धेआन ।  
सुमति रमापति कर गुणगान ॥

राजा—यः कोऽयं भोः !

दीवारिकः—(प्रविश्य, शिरसा प्रणम्य) एतोस्मि, आणवेदु महाराजो ।  
[एतोस्मि, आज्ञापयतु महाराजः ।]

राजा—कञ्चुकिने शीघ्रमगत ।

दीवारिकः—ज देओ आणवेदि । [यद् देव आज्ञापयति ।] (इति निष्क्रम्य  
पुनः कञ्चुकिना सह आयातः ।)

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—(आश्चर्यं निर्वर्ण्य जरावेकलयां नाटयति):—

अमोल = अमूल्य । विमल धवल = निर्मल एवं उज्ज्वल । चामर =  
चेंबर । परजापति = बह्मा । तसु = तनिका । कर = राजस्व (देवत) ।  
निखिल = सभ । वैरविनाश = शत्रुक नाश कमनिहार । किनास =  
किन्नरेश, कुथेर ॥

राजा—कयो एतय अछि ?

दीवारिक—(प्रवेश कय, साथ झुकाय प्रणाम कय) इवेह हम छी । आज्ञा  
देल जाओ महाराज !

राजा - कञ्चुकी के जेवदी वजाबह ।

दीवारिक - जे सरकारक आज्ञा । (बहार भय कञ्चुकीस संग आपल ।)

(सुखन कञ्चुकी प्रवेश करैत छथि ।)

कञ्चुकी - (अपनाके नीक जकां देखि बुढारीक दुःखक अभिनय करैत छथि)

[गीत सं० - ८]

हमे कञ्चुकि भयसागर ताम ।  
नृप अभिलषित करिअ सभठाम ॥  
कास-कुसुम तह उज्ज्वल केत ।  
सवतह<sup>१</sup> सबके<sup>२</sup> दिअओ उपदेश ॥  
जराजो<sup>३</sup> विवल अतिकम्पित देह ।  
पद देहते<sup>४</sup> पथ होअ सन्देश ॥  
सवन विलोचन मन्धर भेल ।  
ई अधिकार तइअओ नहि<sup>५</sup> गेल ॥  
कर सोझे निरमल रजतक पण्ड ।  
सतत रहिअ हमे अन्धर-खण्ड ॥  
सबहु काज हमरा अवधान ।  
हरिपद प्रणत रमापति भान ॥

(निवृत्त निरुद्ध) एत महाराजः सिंहासनमलङ्करोति । तदुपसर्पामि ।  
(इत्युपसृत्य) जयति जयति महाराजः । महाराज ! किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

गीत सं० - ८

नृप अभिलषित = राजाक जे इच्छा । कास कुसुम = पाड़ीक फूल  
सवन । सवतह = सभ ठाम । जराजो = बुढारीस । पद = पद ।  
पथ = रास्ता पर । सवन = वान । विलोचन = आँखि । मन्धर =  
क्षीण शक्ति । ई = कञ्चुकीक । रजतक = चानीक । अन्धर खण्ड  
= अन्तःपुर । अवधान = जान ॥

(नीकजकां देखि) इवेह महाराज सिंहासन के शोभित करैत  
छथि । त लग जाइत छी । (लग जाय) महाराजक जय हो । महाराज !  
कोन काज लय वजाओल अछि ?



राजा - नयसागर ! रुक्मिण्याः परिणयार्थं देवी मां प्रति कुपितैव तिष्ठति ।  
अतस्तद्विचारणार्थं तां सम्प्रसादानयेति ।

कञ्चुकी - यथाऽऽज्ञापयति महाराजः । (इति निष्क्रम्य अन्तःपुरं गतः । देवी-  
समीपं गत्वा) देवि ! रुक्मिण्याः पाणिग्रहार्थं देव्या सार्धं महाराजः  
किमपि मन्त्रयिष्यति ततो देवी द्रुतमानयेत्यहमनुप्रापितः । तेन  
देव्या तत्क्षणीपगमनमधुनेव विधेयम् ।

देवी - अञ्जनायनागर ! मए बारंवारं अभ्यर्त्तयदो वि महाराजो ण लज्जेदि,  
तयो कथं तत्थ<sup>१</sup> गन्तव्यं । [आर्यं नयसागर ! यथा बारंवारमभ्य-  
र्त्तितोऽस्मि महाराजो न लज्जते, ततः कथं तत्र गन्तव्यम् ?]

कञ्चुकी - तथाप्येकवारं पुनरपि तत्र गमनमेव देव्याः श्रेयस्कर्म ।  
देवी - अञ्जना वञ्चनं कथं अण्णमा कदम्बं, तयो गमिस्स<sup>२</sup> ।

[आर्यस्य वचनं कथमन्यथा कर्तव्यं, ततो गमिष्यामि ।]

(ततः प्रविशति पटीशेषेण कुमारिकया सह देवी)

राजा—नयसागर ! रुक्मिणीक विवाहक हेतु महारानी हमरा पर तमसायल  
जका छथि । अतः तकर विचारक हेतु हुनका प्रसाद कय जानह ।

कञ्चुकी—जे महाराजक आज्ञा । (बहार जाय झ्यौड़ीक भीतर नेलाह । देवीक  
लग जायके) महारानी ! रुक्मिणीक विवाहक हेतु अपनेक संग  
महाराज किछु परामर्श करताह । ते 'देवीके' (अहंके) जल्दी  
लावह<sup>१</sup> -- ई कहि हमरा समीप पठओलनि अछि । अतः देवी  
(अहं) हुनक समीप एहिखन चली ।

देवी—आर्य नयसागर ! हुन बेरि बेरि महाराजके एहिल्ल प्रार्थना कयलियनि,  
तयो ओ नहि लज्जित होइत छथि, त कोना ओतव जाठ ?

कञ्चुकी—तेपो एक बेरि फेरो ओतव देवीक जएथे नीक होयत ।

देवी—अपनेक वचन केँ कोना टारि सकैत छी, तेँ जायब ।

(तखन प्रवेश करैत छथि परमा हटाय कुमारिक संग देवी)

१ - तत् गमनम् - अ । २ - तस्यागमनार्थं - क ख । ३ - गमिस्ते - क ख ।

[गीत सं०-१]

आधि मलीन दीन तनु भैस ।  
भीषमनृप - सहिषी परवेस ॥  
अविरल लोचन गर जलधार ।  
कुचलय बल जनि मुञ्च तुषार ॥  
आनन दिवस -- सुधाकर तूल ।  
कुञ्जल चिकुर अतिमर्दिन हुकूल ॥  
मणिमय सकल विभूषण काढ़ि ।  
भूषति निकट भेलि मए ठाढ़ि ॥  
तनया देखि देखि मने भाख ।  
समुचित वर कारने अशिलाप ॥  
हरि तेजि चित्त धरथि नहि आन ।  
रानी रूप रमापति भान ॥  
लण्डबलाकुल सागर चन्द्र ।  
रस बुझ रसनव सिह नरेन्द्र ॥

अपि क-

[गीत सं० - १०]

रामने धिनिन्द मरालक नारि ।  
संगे जननि चतु राजकुमारि ॥

गीतसं० - ९

आधि = दुःख ही । दीन तनु = गरीब शरीर देहक वेश । सहिषी = पर-  
रानी । अविरल = धाराप्रवाह । लोचन गर = आँखि ही चूबेत अछि । कुचलय  
बल = कमलक पत्ती । मुञ्च = छोड़ैत अछि । तुषार = वर्षा, पाछा । आनन =  
मुँह । दिवस-सुधाकर = दिगुका चन्द्रमाक सन । चिकुर = केश । हुकूल = वस्त्र ।  
काढ़ि = सजाव । भाख = माँथ धुनेत छथि । हरि तेजि = कृष्णकेँ छोड़ि ।  
आओरो ..

गीत सं० - १०

रामने = चालि ही । मरालक नारि = हंसीकेँ । जननि = मायक । नख-



नख - रुचि गज्जित तूतन चन्द ।  
 चरणे विलज्जित थल - अरविन्द ।  
 करिकर पाव' न उठ - जुग भास ।  
 ते' गिरि कन्दर करय निवास ॥  
 विपुल नितम्ब, मध्य गटि खोल ।  
 करतल अरुण - कमल छवि जीन ॥  
 भ्रजपुग कनक - मृणालक तूल ।  
 कम्बु कण्ठ, नासा तिल - फूल ॥  
 अधर विनिन्दित विम्ब प्रवाल ।  
 कुन्द - कोरक राम दशन विशाल ॥  
 लय ध्वजन - युग लग हिमघाम ।  
 तथो तस आनन दीध उपाम ॥  
 चामर नेहि तसु चिकुर - समान ।  
 रुकुमिनि - रू रमापति भान ॥

राजा - अयि प्रिये ! इहेवासने समुविद्यताम्, ।

रुचि = नहक चमक सौ । गज्जित = तिरस्कृत । चरणे = पावर सौ । थल अरविन्द  
 = थल कमल । करिकर = हाथीक भूँड़ । उल्लुग = हनु जाँघ । गिरिकन्दर  
 = पर्वतक गुहा मे हाथी निवास करेछ । विपुल = विशाल । मध्य = देहक  
 बीच मे । गटि = शर । खोल = धीन, पातर । करतल = तरहस्थी । अरुण =  
 लाल । छवि = सन्दरता । जीन = जीतेत छलि । भ्रजपुग = दुल्लु बौहि सोनाक  
 कमलतालक तुल्य । कम्बु = शंखक समान । नासा = नाक । विम्ब = तिलको  
 डुक फड़ ओ मूँगा (प्रवाल) । कोरक = कली । दशन = दाँत । हिमघाम =  
 चन्द्रमा । चिकुर = केश ॥

राजा - अए प्रिये ! एतहि आसन पर बैसू ।

देवी - (दीर्घ निःस्वस्थ) महाराज ! जाव रुक्मिणीए परिणयो न भोदि, कथं  
 आसणे उअधिसहि दाव ? [महाराज ! जावद् रुक्मिण्याः परिणयो  
 न भवति कथमासन उपविशामि तावत् ?] (इति भूमावुपविशति ।)

राजा - प्रिये ! दुहितु विवाहे अनन्वाः प्राधान्यम्, अतो देव्याः कीदृशो विमर्शः ?

देवी - जाह ! अह्माणं विचारेण कि एत्थ, जदो कुमारिआ-पण्डिते जणओ जहा  
 करेदि तहा भोदिति । [नाथ ! अस्माकं विचारेण किमत्र, यतः कुमा-  
 रिका परिणये जनको यथा करोति तथा भवतीति ।]

राजा - प्रिये ! देव्या यो वरोऽभिलषितो मयाऽपि स एव विधेयः । अथैवञ्च, यत्र  
 कन्यका-जनन्याः कुत्सितवरे पक्षपातस्तत्रैव जनकस्य स्वेच्छा । न खलु  
 भवाद्भ्यः कुत्सितवरे पक्षपातशीला भवन्ति । तस्मात् स्वविमर्शमावे-  
 दय ।

देवी - (उत्थाय साधु पातं सप्रश्रयं गीतेन आवेद्यति :-)

[गीतसं० - ११]

भूपति ! अवहु करिअ सुविचार ।

दुहित-परिणय तोरित करिअ, अनिअ घटक कुमार । ध्रु० ॥

देवी - (पंच सौ लय) महाराज ! जावत् रुक्मिणीक विवाह नहि होइत अछि  
 तावत् आसन पर कोना बैसू ? भूमिअहि पर बैसैत छथि ।)

राजा - प्रिये ! वेदोक विवाह मे माहक प्रधानता होइछ । अतः देवीक केहन  
 विचार अछि ?

देवी - प्राणनाथ ! हमरा विचारे एहिमे की, कियेक तँ कुमारिअ विवाह  
 मे पिता जेवा करथि तहिना होइछ ।

राजा - प्रिये ! देवीके जे वर इष्ट छथि, हमरहु सएह कर्तव्य छथि ।  
 दोसर बान, जाहिठाम कन्याक माहक अछलाह वर पर पक्षपात  
 रहैत छनि ओतहि पिता स्वेच्छाचारी होइत छथि । मुदा, अहाँ  
 सन माए अछलाह वर मे पक्षपात नहि कय सकैत छथि । तँ अपन  
 विचार कहू ।

देवी - (ऊठि तोर समवेत त्रिनयपूर्वक गीतद्वारा आवेदित करैत छथि) :-



राजकाज तेजि अति सविनय भय, नेओतिअ नृपति + कदम्ब ।  
 सहज कुटम्ब सौवीर समति लिख, आवे न उचित विलम्ब ॥  
 रूपे शौले कुले विक्रमे आनर नागर गुणक निधान ।  
 सै वर अपने मने अनुमानिअ, ताहि पुलव के आन ।  
 कुतनय दुरमति चिते जनु राखिअ, भाखिअ जनु किछु मन्त्र ।  
 ते परिराटि विवाह निवाहिअ, जाहि बाड नहि दम्ब ॥  
 कूमरि हमरि जलधि-दुहिता सनि, बरस वरस बस साहि ।  
 हरखि निवेदिअ सकल-कला-बस, नारायण सम जाहि ॥  
 तुअ अभिलषित सकल परिपूरत, न करिअ हृदय मलान ।  
 रकुमिति देव पति होयत श्रीपति, सुमति रमापति भान ॥  
 राजा—ममाऽप्येतदेवाऽभिमतं, किन्तु तादृश-सकलपुण्ययो वरो मया विचारितः । स देव्याऽपि श्रोतव्यः—

दुष्टानां निधनाय सम्प्रति भूयो भाराऽन्ताराय यो  
 रक्षायै विदुषां सती विभूतवशाया लक्ष्मीपतिः ।

गीत सं - ११

दुहिता-परितय = बेटीक विवाह । तारित = शीघ्र । नृपति-कदम्ब =  
 राजाक समुदायके । रक्षोधि = सम्बोधन कय । समति = सम्मति ।  
 विक्रमे = बोरता । शौ = कुतनय = कुपुत्र (स्वमी) । मन्त्र = अधलाह  
 कथा । दम्ब = हम्ब, झगड़ा । कूमरि = कुमारी ।  
 जलधिदुहिता = समुद्रक पुत्री लक्ष्मी । मलान = दुःखी । श्रीपति = कृष्ण ।

राजा—हमरहु रमेहु विचार अछि, किन्तु ओहन सभ गुणक आश्रय वर हम  
 विचारते छी । से देखियो सुनल जायः—

जे दुष्ट सभक मृत्युक हेतु, एखन पृथ्वीक भार उतारबाक लेल, विहातक  
 रक्षाक हेतु ओ तीन लोकक रक्षाक हेतु लक्ष्मीपति श्रीविष्णु यादव-वंश  
 से वसुदेवक घर मे जन्म लेलनि अछि, सएह समस्त पापक नाश कय-

सम्भूतो वसुदेव-वैशमनि यदो वंशे समस्ताऽद्यहा

श्रीकृष्णो मधुरापुरे विजयते जामातृयोग्यो वरः ॥६॥

देवी—महाराज ! रुक्मिणिए सरिसो वरो मए बि सो णिकविशो, अइ एतथ  
 बागविससदि । [महाराज ! रुक्मिण्याः सदृशो वरो मयापि स निष्प-  
 पितो यद्यत्राऽऽगमिष्यति ।]

राजा—सहि गच्छतु देवी रुक्मिण्या सहाऽन्तःपुरम् । मयापि कुमारमाहूय  
 क्रियते स्वयंवरार्थमुद्योगः । तदा सकल-राजन्य-मण्डले निमग्नयोधे  
 यादवानामपि निगमनं कुमारस्यनुमतमेव भविष्यति । ततो भक्तव-  
 त्सलतया अन्तर्गमि भगवान् आगमिष्यत्येव ।

देवी—जं आपवेदि जाहो तहा करेम्ह । [नदाज्ञापयति नाथस्तथा कुर्वः ।]  
 (इति निष्क्रान्ताः शब्दे)

॥ इति रुक्मिणीपरिणये राज्ञोसमाश्वासनं नाम प्रथमोऽङ्कः ॥

निहार श्रीकृष्ण जसय करवाक योग्य वर मधुरा नगर मे विजय प्राप्त  
 कय रहल छथि ॥६॥

देवी—महाराज ! रुक्मिणीक समान वर हमरहु रमेहु सूरत छथि जं ओ एतय  
 आवथि ।

राजा—तखन देवी (अहो) रुक्मिणीक संग अन्तःपुर जाय । हमहुँ कुमारके  
 हजय स्वयंवरक हेतु उद्योग करैत छी । तखन सभ क्षत्रिय-लोकनिके  
 निमग्न देवाक प्रसंगमे यादवो लोकनिके निमग्न देव कुमारोक  
 (स्वमीक) सम्मते होयत । तकर बाद भक्त पर स्नेहरखवाक कारण  
 अन्तर्गमी (मनक बात बुझनिहार) भावाव् श्रीकृष्ण अववे करताह ।

देवी—जे अवनेक जाज्ञा से करैत छी ।

(सभ बहार भय गेल)

रुक्मिणीपरिणय मे 'रानीके' धरो देव' नामक पहिल  
 अङ्क समाप्त भेल ।



## अथ द्वितीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति राजा कञ्चुकी च )

राजा— नयसामर ! आहूयतां कुमारः ।

कञ्चुकी— ( स्वामीनः समीपं गत्वा ) अवति जयति कुमारः । महाराजस्त्वं दूतं द्रष्टुमिच्छसि ।

स्वामी— एहि, गच्छामि । ( इति सहस्रोत्थाय प्रचलितः । )

कञ्चुकी— ( नृपसमीपं गत्वा ) महाराज ! समायातः कुमारः ।

स्वामी— ( प्रणम्योपविश्य ) महाराज ! किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

राजा— वत्स ! तव भगिन्या दशवर्षावधौ वृत्तम् । तस्याः पाणिग्रहणहेतुं वंकीमामभ्यर्चयति । तत्र युवराजस्य काः परामर्शः ?

स्वामी— मयाऽभिमतमेव सत् ।

### द्वितीय अङ्कः

( तत्परं वाच राजा ओ कञ्चुका प्रवेशं करोति छधि । )

राजा— नयसामर ! कुमारके बजाउ ।

कञ्चुकी— ( स्वामीक समीपं जाय ) कुमारक जय हो । महाराज अहाँके शीघ्र देखय चाहै छधि ।

स्वामी— जाउ, जाइत छी । ( एकाएक ऊठि चलैत छधि । )

कञ्चुकी— ( राजाक लग जाय ) महाराज ! आवि गेलाह कुमार ।

स्वामी— ( प्रणाम कय बैसि ) महाराज ! कियेक बजाओल ?

राजा— वाउ ! अहाँक वहिनिक दस वर्षा वयस भय गेल । हुनक विवाहक हेतु महारानी हमरा कहैत छधि । ताहि मे युवराजक की विचार ?

स्वामी— हमर अशोचैत अछि से ।

१ = ० विमर्शः - ख ।

राजा— कस्तस्याः समुचितो वरौ विचारितः ?

स्वामी— चेदिराज-दमघोष-तनयः शिशुपालाख्यो महाराजः ।

राजा— तस्य कुल-शील-विनय-विक्रम-घटकमुखात् किं त्वया परीक्षितम् ?

स्वामी— मयेव सर्वं जायते ।

राजा— तथापि लौकिककार्ये तेषां प्राधान्यादयस्य<sup>१</sup> ते प्रष्टव्याः ।

स्वामी— तर्हि समागच्छतु ।

राजा— दीवारिक ! आहूयतां कलहवर्धनाऽभिधानो घटकः ।

दीवारिकः— जं देओ आणवेदि । [ यद्देव आशापयति । ] ( इति निर्गत्य सेन राह आयातः । )

( ततः प्रविशति कलहवर्धनः )

कलहवर्धनः— ( गीत सं० - १२ )

हम अति घटक नृपति सबै जान ।

सब तह<sup>२</sup> अधिक हमर अभिमान ।

राजा— कमिका हुनका लेल उपयुक्त वर विचारल अछि ?

स्वामी— चेदि देशक राजा दमघोषक पुत्र शिशुपाल नामक महाराजके ।

राजा— हुनक कुल शील विनय इत्यादि घटकक मुहें अहाँ जाँचल अछि की ?

स्वामी— हमहीं सब किछु जनेत छी ।

राजा— तयो लौकिक काजमे हुनका लोकनिक प्रधानता रहैत छनि, तेँ अवश्य हुनका सबकेँ पुछियन्ह ।

स्वामी— त आवओ ।

राजा— दीवारिक ! कलहवर्धन नामक घटककेँ बजावह ।

दीवारिक— जे सरकारक आज्ञा । ( बहार भय हुनक संग अवैत छधि । )

( तत्पश्चात् कलहवर्धन प्रवेशं करोति छधि । )

कलहवर्धनः— ( गीत सं० - १२ )

सब तह<sup>३</sup> सबसँ । परितोष<sup>४</sup> कल । विग्रह<sup>५</sup> विरोध । साखा<sup>६</sup> बँधक

१ - ममेव - ख । २ - प्राधान्यादयस्याऽवश्यं - ख । ३ - सब तह - ख ।



घटना करिअ हूअहि रावे ठाम ।  
 काज एकओ न होअ परिनाम ॥  
 जकरा कथा रहिअ हमे लाइ ।  
 तकरा हुरि सओ<sup>५</sup> विग्रह बाइ ॥  
 सोआ मूल कुलिन अकुलीन ।  
 कबल विवेचन हमर अधीन ॥  
 नृप सिसुपाल अपन हित जोहि ।  
 कुमर<sup>६</sup> निकट पठाओल मोहि ॥  
 सुमति रमापति कौतुक पाव ।  
 सिंह नरेश भूप बुझ भाव ॥

( नृपसमीप गएवा ) महाराज ! कबगहूओहि ?

राजा - घटकाधिव ! कश्मिणीक विवाहार्थ विचार करणीय । तय के राजानः  
 स्वजनता सन्ति ?

कलह० - संक्षेपेण श्रोतव्यम् -

सिसुपालः सुमीयवच्च दन्तवक्त्रो विदुरधः<sup>७</sup> ।

शास्व<sup>८</sup>श्वाश्च जरासन्धो वेणुदारिद्र्यायः ॥३॥

राजा - यादवाश्च कथं भोक्ताः ?

कलह० - ते तु बहुदोषयुक्ताः ।

भेद । मूल = मूलभाग । जोहि = ताकिहे<sup>१</sup> । कुमर निकट = स्वमीक लग ॥

( राजाक समीप जाय ) महाराज ! कोन काथे हम वजाओल गेल छी ?

राजा - घटकराज ! कश्मिणीक विवाहक हेतु विचार करवाक अछि । ताहिमे  
 के राजासभ अपनलोअ छथि ?

कलह० - संक्षेपहि मे सुनल जाय सिसुपाल, सुमीय, दन्तवक्त्र, विदुरध, शास्व,  
 जरासन्ध ओ वेणुदारि इत्यादि राजा स्वजन छथि ॥३॥

राजा - एहिमे यादव भियेक नहि कहल गेलाह ?

कलह० - ओ लोकनि सँ बहुत दोष सभ सँ दूषित छथि ?

१ - सो<sup>१</sup> । ६ - कुमरक - क, कुमर - ख । ७ - दन्तवक्त्र, विदुरधः - ख ।

८ - शास्व - ख ।

राजा - कथं कीदृशो वितयः ?

कलह० - सर्वे विनीताः सन्ति । तेष्वपि दमघोषतनयस्य अदिगते महाराज-  
 सिसुपालस्याधिको वितयः ।

राजा - कथय ।

कलह० - श्रूयतां तद्वाचिकम् :-

[ गीतसं० --- १२ ]

करगुण जोड़ि समित भय, कहय निवेदन मोर ।  
 भीषमदेव नृपति सजो, रुकुमिनि हेतु निहोर ॥  
 विगल बंस तुअ सवतह, कोरति के नहि जान ।  
 सरने करसे तोहे<sup>१</sup> आगर, हमे तुअ दास समान ॥  
 जइअओ तराय होअ मन, तइअओ कहिअ पुनु तोहि ।  
 रुकुमिनि जन्म विवस सजो, जाना बाइहि मोहि ॥  
 से मोर पुरिअ भुपति, निज सरणगत जानि ।  
 बड़ जन हृदय सदय थिक, ताहि न मने पुन हानि ॥  
 परिजन कोय रहिअ हमे, सेना<sup>२</sup> लइए सहाय ।  
 सतत रहय कुण्डिनपुर, किंकर अनुग कहाय ॥  
 नृप सिसुपाल विदक सति, सुमति रमापति भान ।  
 रस बुझ मोखिल भूपति, सिंह नरेश सुजान ॥

राजा - पूर्वोक्त राजा सभ मे कितन कहत वितय छथि ?

कलह० - सब विनीत छथि । ताहु मे दमघोषक पुन बेविराज महाराज सिसु-  
 पालक वितय अधिक अछि ।

राजा - कहह ।

कलह० - हुनकहि सभ मे सुनल जाय -

गीतसं० १३

करगुण = दुहु हाथ । समित = तन्त्र । निहोर = वेहोरा, प्रार्थना ।  
 कोरति = कीरति, यथा । तराय = वास, डर । निज = निजा,  
 अपन । परिजन = परिवार । किंकर अनुग = अनुगामी शैवक ॥

१ - तोहेता - ख ।



(राजा १० तूर्णों स्थित)

स्वामी—अहो ! विनयातिरेकः । अहो ! माधुर्यं वचन-संविधानस्य । महाराज !  
अतएव सदा उच्यते अयमेव वरो विधेयः इति ।

कलह—यदाह युवराजस्तदेव कर्तव्यम् ।

राजा—द्वितीयमपि घटकमानीय विचार्यते । दीवारिक ! आहूयतां हरिवल्लभ-  
शर्मा यादवानां घटकः ।

(दीवारिको गत्वा तेन सहायातः । ततः प्रविशति हरिवल्लभः)

हरिवल्लभः— [गीत सं०—१४]

हमे हरिवल्लभ घटनाकार ।  
यादव कुल धिक हमर बिचार ॥  
घटनक कथा करिअ हमे थोड़ ।  
अलपट्टि काल कराविअ जोड़ ॥  
रुकुमर भूमर ११ जे घर पाह ।  
रुकुमिणि सज्जो नहि तनिक १२ विवाह ॥  
हरिपद प्रनत रमापति भान ।  
रस युल सिंह नरेन्द्र सज्जन १३ ॥

(राजा खूप रहेत छथि ।)

स्वामी—अहो ! अतिशय विनय, वाह ! वचन-रचनाक मयूरता ! महाराज !  
तें हम २ हैत छी—हिनके घर बनाव ।

कलह—जे युवराज कहैत छथि सएह कथल जाय ।

राजा—दोसरो घटकके आनि विचारैत छी । दीवारिक ! वजावह हरिवल्लभ  
शर्मा नामक यादवक घटकके ।

(दीवारिक जाय, तनिक संग अवैत छथि । तखन हरिवल्लभ प्रवेश  
करैत छथि ।)

हरिवल्लभ— [गीत सं०—१४]

घटनाकार—विवाह ठीक करयवला, घटका अलग = थोड़हि ॥  
(राजाक समीप जाय शुभाशिष देत छथि ।)

१० - ००० - 'ख' । ११ - कुनर - ख । १२ - तनिक - ख । १३ - समाप्त क ।

(नृपसमीपं गत्वा शुभाशी देवाति ।)

राजा - (प्रणम्य विनयातिरेकं करोति ।)

कलह—(साभ्यमुख्यं जनान्तिकम्) कुमार ! मयि कोऽपि ताड्यदरः कृतः ।  
अस्मिन् घटकापसद्वै वधमाधरातिशयः ?

स्वामी—आदरादिभ्यो भादिनं कार्यमनुमापयति प्राज्ञः, तेन कृष्णपक्षपातीषु तात-  
स्य हृदयमवगच्छामि । भाषणादेवाभिप्रेत्य संविध्यति ।

हरिवल्लभः—महाराज ! किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

राजा—रविमण्यर्थं को वा महीपः पक्षपाताहः ?

हरिवल्लभ—(जनान्तिकम्)

उत्पत्ति-स्थिति - संहारहेतुं गच्छेवाह्वनः ।

संवितरत्न आयाता श्रीकृष्णो जगदीश्वरः ॥१॥

राजा - भद्रम् । नगाभिज्ञेतेमेव भवद् वचनं, किन्तु दुर्विनीतो मम कुमारस्त-  
त्प्रातिपक्षम् आचरति ।

(राजा प्रणामं कय अतिशय विनय करैत छथि ।)

कलह—(ईर्ष्या सहित कनफुसकी) कुमार ! हमरा विषय मे कोनो आदर  
नहि कथलनि । एहि नीच घटकक बेरि मे कियेक अतिशय आदर  
करैत छथि ?

स्वामी - आदरहि सँ भावी कार्याक अनुमान लगवैत छथि विधान्, ताहिसें  
बुझि पड़ैछ जे पिताक हृदय कृष्णक पक्षपाती छनि । गप्पे सँ स्पष्ट  
होयत ।

हरिवल्लभ - महाराज ! कोन काजक हेतु हम बजाओल गेल छी ?

राजा - रविमणीक लेल के राजा स्वीकार करवाक योग्य छथि ?

हरिवल्लभ - (कनफुसकी कय) संसारक उत्पत्ति स्थिति ओ नाशक कारण  
गच्छेवाह्वन (गच्छेक सवारीवला) जगदीश्वर श्रीकृष्ण अहाँक  
जमायक योग्य छथि ॥१॥

राजा - बड़ बड़ियाँ । हमर सम्मते अहाँक वचन अछि, किन्तु अशिष्ट हमर  
कुमार तकर विरुद्ध आचरण करैत छथि ।



हरिवल्लभः - (कुमारसमीपं गत्वा) जयति जयति कुमारः ।

रवमी - भवद्गुणं रक्षति विचार्यताम् ।

(उभौ तथा कुरुतः । तत्र -)

हरिवल्लभः - (जनान्तिकम्) को वा वरो विचारिता ?

कलहः - दमघोषतनयः । भवता को वा विचारितः ?

हरिवः - वात्सदेवः ।

कलहः - (सक्रोधं) जरायां बहवो दोषा इति सम्यगुक्तमभियुक्तं । इतः,

सर्वे ते यदुर्वशजा नृपपदभूष्ठावचः । तत्राऽप्यसौ

गोपालः परितोपितो १४ बहुदिनं गोवत्ससंरक्षकः ।

गोपस्त्रीरमणीयसुको वृषभहा स्त्रीघातको बन्धुहृत् १५

कृष्णो भूपसुता-करग्रहविधौ कस्मात् त्वया सम्मतः । १६॥

हरिवल्लभः - शृणु रे मूर्ख ! त्वया न परिचीयते देवदेवः ।

हरिवल्लभ - (कुमारक लभ जय) कुमारक जय हो ।

रवमी - अहाँ कुतू चटक एकास्त मे विचाल ।

(दुनू तहिना करै छथि ।)

हरिवल्लभ - (कनफूसकी कय) कोन बरकै अहाँ सोचने छी ?

कलहः - दमघोषक पुत्र । आ अहाँ किनक विचार कयने छी ।

हरिवल्लभ - वात्सदेव ।

कलहः - (क्रोधपूर्वक) बुढ़ारी मे बड़ बड़ दोष होइत छैक से मानवलोकिनक कहल छीकै छनि । किधैक तः -

ओ सभ मधुवंशी, राजाक पदसँ च्युत अछि, ताहू मे ओ गोआर सभ सँ बहुत दिन धरि पोशल गेल, गाय बच्छाक चरबाहू, गोआरक स्त्रीक संग रमण करबा मे उरसूक, बहुदक हरशारा, स्त्री (पुतना)क घातक, बन्धु (कंस)क हत्या कयनिहार कृष्ण एहि राजाक पुत्रीक

विवाह मे अहाँक द्वारा कोना उपयुक्त बुझल गेल ? ॥१॥

हरिवल्लभ - सुन रे मूर्ख ! तौ कृष्ण केँ नहि बिन्दैत छहुहू, :-

१४ - परितोपित - क. ख । १५ - वरभृता - ख ।

भूषालास्तव सम्मता नरपत्नी । दैतेयदेहाः क्षिति

सम्भूताः विशुपाल-वात्स्य-मगधधीशादयः सन्ति वै ।

तेषामेव विनिग्रहाय जगतामादि र्यो बाल्लभः

श्रीकृष्णो रमतेऽधुना मधुरिपु १७ लेश्वावतारो भुवि ॥१०॥

अथ च,

गोपास्ते दिव्यदेहाः मुकुतबहुमुखो नन्दगोपः प्रवेशो

गोप्यस्तादृशाऽऽसरीऽशा कृजभुवि जनिता देवराजानुमत्या ।

कंसोऽरिष्टश्च दैत्यः कपटधृतस्तनुः पूतना बालहन्त्री

कस्मिन् दोषास्त्वयोक्तास्त्रिभुवन-महितेऽन्धमघवे ते गुणाः स्युः ॥११॥

कलहः - धिक् बृद्धापसह ! सत्वरं प्रयाहि यावद् युवराजेन न १९ श्रुतमस्ति ।

हरिः - अरे बालिभरः ! नूतनघटक ! कुमारसमीपेऽपि वक्तव्यमेवेतत् ।

ऐ मनुष्यमे पशुस्वरूप ! तोहू सम्मत राजासभ पृथ्वी

पर दैत्य देह धारणकय उत्पन्न भेल विशुपाल, वात्स्य, मगधराज

(जरासन्ध) आदि जे केओ अछि तकरहि सभक मारबाक हेतु संसारक

आदिस्वरूप मधुवंशीक प्रिय मधुसूदन श्रीकृष्ण एखन पृथ्वी पर अव-

तार लय रमण करैत छथि ॥१०॥

आओरो -

ओ गोपलोकनि अलीकिक देहधारी धिकनि, बहुते पुण्य सँ युक्त नन्द

गोप प्रजापति (ब्रह्मा) धिकाह, ओ गोपीसभ अप्सराक अंश धिकीह जे

देवराज इन्द्रक आज्ञा सँ वज्रपुनि पर जगत् लेने छथि । कंस दैत्य

अशुभ कर्म तथा छल सँ सरीरधारिणी पूतना बालकक हत्यारित

छल । जाहि त्रिभुवन-पूजित माधव मे तौ जे दोष कहलह अछि ते

सभ गुण धिकनि ॥११॥

कलहः - धिक् नीच बूढ़ ! भइ दय भागह यावत् युवराज ई बात नहि सुन-  
लहुहू अछि ।

हरिवल्लभ - अरे नादान ! तबस्मिन्ना घटक ! कुमारक जग ई वज्रमे करब ।

११ - बालू - ख । १२ - मुररिपु - ख । १३ - सहिते - ख । १४ - X - ख ।

१५ - बालनूतन - क ।



(इति कलहापमानो कुमारनिकटभागत्वं स्वं स्वं वाच्यमर्थमावेदितवन्ती । तत्र प्रथमं कलहवर्धनः)

कलहः -

[गीतसं०-१५]

कुमार सुनिय<sup>२१</sup> हमर विचार ।  
जे वर कयने अछि उपकार ॥  
नृप<sup>२२</sup> दमघोष - तनय शिशुपाल ।  
जसु पद प्रणत बहुत भूपाल ॥  
कुल विक्रमे तू अ विक्रमि समान ।  
तसु सम विनय कथा के जान ॥  
सौम सुनीय जरासन्ध<sup>२३</sup> राज ।  
सभका अभिमत अछि ई काज ॥  
घटना रोति रमावति माय ।  
सिंह नरेश भूप युक्त भाय ॥

रुक्मी भवता सौ सम्प्रसाज्यते ॥ (हरिवल्लभ प्रति) भवानपि कथ्यते ॥

हरिवः -

[गीतसं०-१६]

हमर विचार सुनिय भूपराज ।  
शिमूवन - नायक विक्रम यदुराज ॥

(एवं जगड़ा करैत बृह षटक कुमारक लग आवि अपन कथ्य अर्थ आवेदित कयलनि । ताहिमे पहिने कलहवर्धन कहैत छथि ।)

कलहः -

गीतसं० - १५

नृप = राजा । दमघोष तनय = दमघोषक पुत्र । जसु पद = जनिक पद पर । विक्रम = पराक्रम सौ । अभिमत = अभीष्ट, मतक अनुकूल ॥

रुक्मी - अहाँ सब निछु उचित कहल अछि । (हरिवल्लभक प्रति) अहूँ कहूँ ।

हरिवल्लभ -

गीतसं० - १६

विभूवन नायक = सीनू लोकक नेता । यदुराज = श्रीकृष्ण ।

२१ - सुनिय = क । २२ - नृपति घोष = क । २३ - जरासन्ध = क ।

हरिपति भइए करिअ बर ताहि ।  
शम्भु बिरजिच प्रणत रह जाहि ॥  
तसु गुन कथन करत के आज ।  
कहय न पाबधि पद्मराज ॥  
नृप शिशुपाल असुर अवतार ।  
ताहि करब वर कोन विचार ॥  
हरिपद प्रणत रमावति भान ।  
रस युक्त सिंह नरेश सुजान ॥

रुक्मी - (हरिवल्लभ प्रति सकोपम्) गच्छतु भवान् मत्संकाशात् ।

हरिवः - (सत्रासे नृपसमीपभागत्य) महाराज ! कि वक्तव्य मया वासुदेव प्रति ।

राजा - देव्यः मया च मनसा परिकल्पितोऽशी  
पाणिग्रहे गदुपति दुःशितः पति मे ।  
मुदा, अशुभमिति शिशुरेव भूय  
प्रसूतुवाचरति, कि करणीयमत्र ॥१२॥

तथापि सम्प्रति स्वर्गपरोक्षेण एव श्रेयस्करः । तस्मिँश्च यथा भगवान्  
आगमन-प्रसावमाचरति तथा विधेयं भवद्भिः ।

विरजिच = ब्रह्मा । पद्मराज = सर्वराज शेषनाग । असुर =  
दैत्य ।

रुक्मी - (हरिवल्लभक प्रति क्रोधपूर्वक) जाउ अहाँ हमरा लग सौ ।

हरिवल्लभ - (जरासन्ध राजाक लग आवि) महाराज ! की कहबनि हम  
श्रीकृष्ण के ?

राजा - महाराजो जो हम मन । हुनके निश्चय कयनि छी जे एहि विवाह मे  
हमर पुत्री पति श्रीकृष्ण होथि । मुदा, दुर्मति ई हमर कुमार  
बारंबार बाधा उपस्थित करैत छथि । एहना स्थिति मे एतय की  
करबाक चाही ? ॥१३॥

तयो स्वर्गवरक उद्योग करबे नीक होयत । ताहि मे  
जाहिँ भगवान् श्रीकृष्ण अवकाश कृपा करथि से अपने लोकनि  
कमल जाय ।



हरिवं—एवं भविष्यति । (इति निष्क्रान्तः) ।

स्वामी—(नृपसमीपमागत्य सकोधं रोतेन वाच्यमावेदयति) ।

अथ गीतम् सं०—१७

हमर विचार सुनिअ महाराज ।  
एहन विचार देल कोन काज ॥  
तेजि सकल समकल भूपाल ।  
श्वसनहु सुनिअ कियो गोपाल ॥  
गोप सबहु परिपाल २४ जगहि ।  
नृपति सुता पति के कह ताहि ॥  
गोपबधु सज्जे सतत बिहार ।  
मातुल वध नहि जाहि विचार ॥  
तिरिबध गोवध जाहि न भीति ।  
ताहि करव वर ई कोन रोति ॥  
कमर कथन रमापति भान ।  
रस बुझु सिंह नरेन्द्र सुजान ॥

राजा—अस्त्येतत् किन्तु श्रुतं मया सखजनेभ्यः, (गोपास्ते दिव्यदेहा इति पद्यं  
[इलोक सं० ११] पठति) । यदि एतया २५ तस्य

हरिवंशम्—एहिना होवत । (बहार होइत छथि) ।

स्वामी—(राजाक समीप आवि क्रोधपूर्वक गीतक द्वारा अपन आशय कहैत  
छथिन)

गीत सं०—१७

तेजि = छाड़ि । समकल = तूलाश्वसनहु = कानहुँ सँ । गोपाल = कृष्ण ।  
नृपति सुता पति = राजपुत्रीक स्वामी । बिहार = रमण करैत अछि ।  
मातुलवध = मामक हत्या । तिरिबध = स्त्रीवध (पूतनाक हत्या) ।  
राजा—ई बात अछि, मुदा हम सुनल अछि सज्जनलोकनिक मुहँ ('गोपास्ते  
दिव्यदेहा' इलोक सं० ११ पढ़ैत छथि) । यदि हिनका (स्वामीक)

२४—सुनिअ कीट—ख । २५—परिपालन—क ख ।

२६—यदि तया तस्योच्चिवाहो—क; यद्यनेन तस्योच्चिवाहो—ख ।

बिवाहो न भविष्यति तदा यादवीय सैन्यमावीय बलात् तव भगिनीं  
परिहृत्यापि कृष्णः २७ परिणोष्यतीत्यपि श्रूयते ।

स्वामी—किंवदन्ती-वाक्यमात्रमेतत् । चेत् राक्षसेतत् पोष्यमाकलयत् तातः ।  
(धनु वानमवलोक्य दन्तीरधरं सन्ददध च) :—

[गीतसं०—१८]

जखने धरव हथ बान सससन, होयत गुण टंकार ।  
सम्मुख हमर रहत के यादव, सरे पुरव संसार ॥  
कह राजकुमार २८, हमे न करवे धर नन्द-कुमार ॥धनु॥  
पाँच सहोदर सकल असव लय, करव समर आरम्भ ।  
से देख रिपुगण नास-जुगुतं गन, तेजत भुजबल दम्भ ॥  
दन्तवदन, विशुपाल, विदूरथ, बहुविधि करत उपाय ।  
सोम, सुनीध, जरासन्ध तरपति, ई सब हमर सहाय ॥  
नृप-सिंहासन जे नहि पावय, नामर छव बिीन ।  
गोपतनय वर, भूपति के कर, जे कुल होअ मलीन ॥  
कुंभर जे किछु कहल जनक सौं, सुमति रमापति नाव ।  
सिंह नरेन्द्र विवेह-महीपति, रसविन्दक बुझ भाव ॥

संग हुगक बिवाह नहि होइत छनि त यादव सेना आनि बलजोरी अहाँक  
वह्निनिक हरणो कय कृष्ण बिवाह कय ऐतह से सुनल जाइछ ।

स्वामी—ई जनश्रुतिक बावये (अकवाहे) थिक । जँ ई सत्य हो सँ अपन बलक  
अन्दाज लगाउ पिताजी । (धनुष-बाण देखि दाँत सँ ठोरकेँ पिच्छैत) २९

गीतसं०—१८

सरासन = धनुष । गुण-टंकार = धनुषक डोरीक कड़-काड़ा-  
हटि । सरे = बाण सँ । नन्द-कुमार = कृष्ण । समर = युद्ध । रिपुगण  
बाँच-सभ । नास-जुगुत = भययुक्त । दम्भ = अहंकार । दन्तवदन = दन्त-  
वक्त्र आदि राजा सभ । नृपविहामन = राजाक सिंहासन । गोपतनय  
गोशारक पुत्र । कुंभर = तबमी । रसविन्दक = रसक प्राप्ति करनिहारि ।

२७—परिणोष्यती—क ख । २८—कुमार—ख ।



राजा—(“भूपालास्तव सम्मता” इति पद्यं [श्लोक सं० १२, पठति] अतएव <sup>२१</sup>मयोच्यते जगदीश्वरेण सह कथं विग्रहो विधेय इति। किन्तु युवराजानुमत्यैव हविषश्याः पाणिग्रहणमाचरन्तु देवदेवाः।  
रक्वमी—(सकोपेन) कन्याप्रदाने जनकस्येच्छा प्रधानेति यथा रोचते ताताय तथा-  
उचरणीयम्। मया तु भवद् राजधान्यां न ह्येषम्। (इति धनुर्वणि-  
माशय प्रचलितः)।

तत्र गीतम् [सं० १६]

जनक वचनं सुनि कोपित भयं मनः, घटकराजं लयं साथः।  
कोटि<sup>२२</sup> विभुषणं सकलं मनीहरं, चापं बाणं सहि हाथं ॥  
रक्षि चलल कुमारः, हम नहि सनवे ऐहन विचार ॥ ध्रु० ॥  
जदुपति दोष सकलः, हम भागल, तातै न राखल कातः।  
हरिहि करधु वरः हमे छाड़व घरः, जायव जगपद आग ॥

राजा—(भूपालास्तव” श्लोक सं० १२ एहि पद्यके गहेन छवि ।) अतएव हम कहैत छी जे तँसारक ईश्वर श्रीकृष्णक संग संगड़ा कयगाइ कोता उचित होयत । किन्तु युवराजिक विचारै हविषणीक हाथ बरव देवदेव श्रीकृष्ण ।

रक्वमी—(क्रोधपूर्वक) कन्यादान मे पिताक इच्छा प्रधान होइत छैक तँ जे भोक लागय से कह । हम त अहाँक राजधानियहु मे नहि रहब । (धनुष बाण लय चलि दैत छवि ।)

गीतसं०—१६

जनक वचन = पिताक बात । कोपित = क्रुद्ध । कोटि = बहारि । चाप = धनुष । जदुपतिदोष = कुल्लुक धनुष । भागल = बहल । तातै = पिता । हरिहि = कृष्णहि के । जनपद आग = आग देश । जेदिराज = जेदि देशक राजा दमघोषक पुत्र । समिह तजि = तनिका छोड़ि । गोप तनय = गोआरक बेटा श्रीकृष्ण । जनक अवधान = पिताक ज्ञान । कोपक परिनति = क्रोधक परिणाम ॥

२६ - × - ई पंक्ति 'ख' मे सहि अछि । ३० - कोटि - क ।

जेदिराज दमघोषक तन्वन्त, जे धिक हमर समान ।  
तसिह तजि गोपतनय वर भाषधि, बुसल जनक अवधान ॥  
कुमर दुखनति, कोपक परिनति, सुमति रमापति मान ।  
सिह नरेन्द्र सकल गुन आगर, दुख नृप परम सुजान ॥

राजा—(उत्थाय सानुनयं प्रतिनिवर्त्य) वर ! युवराजानुमत्यैव मया सर्वं कार्यं विधेयं, किन्तु त्वामिममन्त्रवन्तु तेषोक्तम् । अन्यच्च, क्षत्रि-  
याणां कुमारिका-परिणये स्वयंवरोऽपि पुरस्कृत एव मन्त्र<sup>२३</sup>स्तत्र वि-  
धातुः कुमारिकायाश्चेच्छा । एवं कृते कलहाशङ्का तु <sup>२४</sup>निवृत्तैव  
भविष्यति ।

रक्वमी—<sup>२५</sup>महाराज ! सम्मतेत । तसिह राजन्योपनिमन्त्रणाय क्रियता-  
मुद्योगः ॥

राजा—<sup>२६</sup>यादवाना निमन्त्रणे को विमर्शः ?

रक्वमी—तेऽपि निमन्त्रणीयाः ।

राजा—(ऊठि सामन्तता दैत घुराव) बाउ । युवराजक अगुमतिअहिसँ हम सब काज करव गुदा अहाँक कभिषाय बुकवाक हेतु ताहिरूपे कहल । दोसरो बातः क्षत्रियसभके कुमारीक विवाहमे स्वयंवरो तँ प्रसिद्धे मन्त्र अछि ताहिमे विधाताक ओ कुमारीक इच्छा काज करैछ । एता कयला पर संगड़ाक आशंका तँ रामापने भय जायत ।

रक्वमी - महाराज ! ई उचित धिक । तखन राजालोकनिक बजयवाक उद्योग कइल जाय ।

राजा - यादवकीकनिके निमन्त्रण देवामे अहाँक को विचार ?

रक्वमी—हुनुकोसभके निमन्त्रण देल जाय ।

२१ - भुवना 'ख' । ३२ - ते - 'ख', ० - 'क' । ३३ - ० - क ।

३४ - ० - क ।



राजा - कः कोऽयं भोः ?

दीवारिका - (प्रविश्य) एसोहिआ आणवेतु देखो । [एसोऽस्मि, आज्ञापयतु देवः ।]

राजा - आहूयतो इदिति गणदक्षमो ब्राह्मणो नामितश्च ।

(दीवारिकस्तथा करोति । ततः प्रविशति ब्राह्मणः)

गीतसं०-२०

के नहि जानय हमे द्विजराज । सतत करिअ हम भुपति-काज ॥

धवल तिलक उपवीत विसाल । धीत वसन-युग कर जपमाल<sup>३५</sup> ॥

ब्रह्मतेजे भूजबले समजूत । आनिअ गमन उपाय बहुत ॥

अधिके दिवसे पाविअ जे देव । ततय तोरित जाइअ अकलेश ॥

मुनति समापति कौतुक गाव । मैथिल नृप रसमय बुझ भाव ॥

द्विजः—महाराज ! शुभानि सन्तु । किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

राजा—(प्रणम्य) द्विजराज ! स्वयंवरार्थं राजानो निमन्त्रणीयान् । तत्र त्वया मथुरापुरीं गत्वा देवदेवः श्रीकृष्णो यादवीः सह निमन्त्रः

राजा—कसो अछि ?

दीवारिका—(प्रवेश कय) इवेह छी, आज्ञा देल जाय सरकार ।

राजा - बजाउ लटव जयबामे पटु ब्राह्मणलोकनिके ओ नौआसवके ।

(दीवारिक तछिना करैछ । तखन ब्राह्मण प्रवेश करैछ छथि ।)

गीतसं०-२०

हमे द्विजराज = हम ब्राह्मणमे धेठ छी से । धवल = लज्जर । उप-  
वीत = जवळ । धीत वसन युग = धोअल एक जोड़ वस्त्र । कर = हावमे ।  
समजूत = संयुक्त । गमन = जयबाक । तोरित = शीघ्र । अकलेश = सुग-  
मता र्थ ॥

द्विज—महाराज ! शुभ हो । कोन प्रयोजन सँ बजाओल अछि ?

राजा—(प्रणाम कय) द्विजराज ! स्वयंवरार्थं राजालोकनिके निमन्त्रण देवाक अछि । ताहि मे अहाँ मथुरापुरी जाय देवदेव

नीयः । प्रेवणीयाश्चान्ये<sup>३५</sup> तरसिनी विद्या तानादेशस्थ-नृपनिम-  
न्त्रणाय ।

द्विजः—सर्वांशोऽन्तरणोयं मया सुप्रकार्यमिदम् । किन्तु प्रत्येकं तत्तत्जन-  
पदानां नामाणि वक्तव्यं देवेन ।

राजा—(गीतेनाऽऽदिशति—)

[गीतसं०-२१]

हे द्विज ! करिअ हमर उपकार ।

ई सहे जन्मपद तोरित समन करि<sup>३६</sup> अथोतिअ भूप-कुमार ॥

अङ्ग बङ्ग गुजरात ओड़िसा, वस्तर कपल कलिङ्ग ।

द्राविड मरुठ केरल सोरठ, कारनाट तैलङ्ग ॥

देश शतपुर आओर नागपुर, मालव कटक अताम ।

देशोमड़ गाहा नगरी बाङ्गा<sup>३७</sup>, राजमहल मुखधाम ॥

मगह मलापुर अओर भोजपुर देश सरैसा<sup>३८</sup> बसार ।

बलिवावासी नगरी काशी, जे थिक विभुवन सार ॥

अन्तरवेग प्रयाग मनौहर, मथुरा मुनक निधान ।

अओर काओर नगर कुर्माचल ओएल के नहि जान ॥

नगरकोट श्रीनगर उज्जगर, मोरंग चीन नेपाल ।

साखार हस्तिनपुर जयपुर पाटलिपुर सुविशाल ॥

श्रीकृष्णके यादव सहित निमन्त्रण देव । आ आज वीधगामी ब्राह्मण-  
लोकनिके नाना देशक राजाक ओहिठाम निमन्त्रण देवाक हेतु पठाइ ।

द्विज—हम सबतरहे राजाक एहि काजके सम्पादित करव । किन्तु, ताहि  
ताहि प्रत्येक देशक नामो बाजल जाओ महाराज ।

राजा—(गीत सँ आदेश देत छथि)

गीतसं०-२१

द्विज = ब्राह्मण । जन्मपद = देश । तोरित = शीघ्र । अङ्ग = भागल-



गन्धभूमि मिथिला अतिसुन्दर, जनक-महीपति-देश ।  
आगम निगम पुराण विवेचनं, द्विजगण कर अकलेश ॥  
जिह्वो कहल नहि से सभ नेमोतय, निजजन करि अवधान ।  
कुमुदिनि कुमरि स्वयंवर कारने, सुगति रमावति भाम ॥

द्विज—महाराज<sup>४१</sup> । परन्तु, सर्वत्र कि वक्तव्यमिति तत्र तत्राऽस्माभिः ।  
राजा—(पत्र वाचयति)—

भूयो भूयो भीष्मकः कुण्डिनो  
नत्वा नत्वा वेदप्रत्येय भूपान् ।  
शस्त्रे शस्त्रे दानकार्ये च दक्षान्  
श्रद्धातय मद्बन्धोऽनुग्रहेण ॥१३॥  
स्वयंवरौ मे कुहितुः शुभे दिने  
वैशाख शुक्ले भवितेति सत्त्वा ।  
सम्प्राप्ततामेत्य<sup>४२</sup> स्वजिह्वरथ स<sup>४३</sup>  
दयालुमिस्तत्<sup>४४</sup> किल सप्तमी बुधे ॥१४॥

द्विज—एव यास्यामि । (इति प्रचलितः ॥)

पुनः । अशोध = अवध । आगम निगम पुराण = तन्त्र वेद ओ पुराण । अकलेश = अनायास । अवधान = ऊह ।

द्विज—महाराज ! परन्तु, सभ ठाम हमरा लोकनि की बाजब से कहल जाय ।

राजा—(पत्र वचैत छथि)—

कुण्डिनपुरक राजा भीष्मक बारंबार प्रणाम कर सकल शास्त्र  
मे ओ बात मे पट राजालोकनि के सूचित करैत छथि जे हमर वचन  
पर हूपा कर आडा करी ॥१३॥

हमर पुत्रीक स्वयंवर शुभ दिन वैशाख शुक्ल सप्तमी बुध के  
होयत से बूमि दयालु अपनेलोकनि सहिमे आबि एकरा संपन्न  
करावी ॥१४॥

द्विज—इयेह जायव । (विदा भेलाह ।)

४०—महाशय—ख । ४१—सम्प्राप्त तामेह—ख । ४२— $\times$ —स ख । ४३—  
वप्राप्ततामेह—क ।

राजा—बहुसम्पन्न-पुरं गत्वा स्वयंवरौद्योगं देवीं निवेदयामि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति रुक्मिणीपरिणये स्वयंवरौद्योगो नाम द्वितीयोऽङ्कः ॥

## अथ तृतीयोऽङ्कः

(यतः प्रविशति श्रीकृष्णः)

[गीत नं० - २२]

हेरदत हर भवभीति कलेश । अतिसुखदायक हरि - परवेश ॥  
कनक - रत्नमय मुकुट विराज । मकराकृति कुण्डल श्रुति छाज ॥  
हृदनील - मणि सप्त तनु कांति । मलयज अनुलेपन बहु भांति ॥  
वदन<sup>१</sup> विनिन्दित सारद चन्द । लोचन युगले अलन अरविन्द ॥  
रोचन तिलक ललाट विमल । पीत वसन युग अर वनमाल ॥

राजा—हमहूँ अन्तःपुर जाय स्वयंवरक उद्योग देवीके बुझवैत छियनि ।

(सभ बहार भेल)

रुक्मिणीपरिणय मे स्वयंवरौद्योग नामक द्वितीयअंक समाप्त ॥

तृतीय अंक

(समस्त श्रीकृष्ण प्रवेश करैत छथि ।)

हेरदत हर = देखितहि हरण करैत छथि । भवभीति कलेश = संसारक भय  
ओ व्यथा । कनक = सोना ओ रत्नजडित । मकराकृति = मोहिक (मोड़क)  
आकृतिवत् । श्रुति = कानमे । तनु कांति = देहक कान्ति । मलयज अनुलेपन  
= धीखण्ड चानन । सारद = सारदक । अलन = लाल । वसन-युग = एक जोड़  
वस्त्र । ३२ = छाती पर । वनमाल = गरा से टेहुत धरिक माल । अङ्गद =

१ = वदन = क ।



अङ्गद बलय, रखन सज्जीर । विविध विभूषण सोभ सरीर ॥  
विमल नखत सम मोतिम हार । जनि बहु गगन गङ्गा दुइ धार ॥  
कञ्जोन् करव तनु रूप बखान । हरिप्रसन्न प्रवत रमावति भान ॥

श्रीकृष्णः—(सभाग्रहणस्थ विलोचन च) कः कोऽयं भोः ।

दीवारिकः—(प्रविश्य, शिरसा प्रणम्य) एगोहि आणवेदु देवदेवो ।

[एषोऽस्मि, आज्ञापरम देवदेवः ।]

श्रीकृष्णः—सभार्थं सध्या आस्तरणीया, रक्षणीयानि च हिरण्यमाग्रासवानि ।

दीवारिकः—मए पड़मं जेव सळो उबणीदं । सम्पदं उण भइ वित्थरीअदि ।

[मया प्रथममेव सर्वमुपनीताम् । साम्प्रतं पुनः भद्रं विस्तार्यते ।]

श्रीकृष्णः—सम्यक् कृतम् । अतः परम् आर्यस्य पन्थानमवलोक्य<sup>१</sup> । कथं विचारित्तुमर्हति ?

दीवारिकः—किञ्चिद दूरं गत्वा विनियत्त्वं सान्द्रं<sup>२</sup> एगो आञ्छरि बल-  
देवो । [एष आगच्छति बलदेवः ।]

श्रीकृष्णः—(सभाग्रहण आदि आदि देवि) कयो अछि ?  
दीवारिकः—(प्रवेश कय मोक्ष न प्रणाम कय) इयेह छी, भागवान् आज्ञा देथु ।  
श्रीकृष्णः—सभाक हेतु ओछान विछावहु, आ मोलाक आसन सेहो रखिहुह ।  
दीवारिकः—हम तँ पहिनिहि सब किछु तैयार रखने छी । आब नीक जकां  
विलास दैत छियँक ।

श्रीकृष्णः—नोक कयलहु । एकर बाद आर्थ बलदेवक बाट देखहु । आर्थ को  
विचारलनि ?

दीवारिकः—(किछु दूर जाय पुडि आनन्दपूर्वक) इयेह बलदेव अबैत छथि ।

१—कोने—ज । २—लोकमे - क; लोच्य - ख ।

श्रीकृष्णः—दूरे समीपे वा ?

दीवारिकः—दुगार-समीपं जवगदो । [द्वारसमीपमुपगतः ।]

श्रीकृष्णः—(सहर्षं गसम्भ्रमं चोदयन्) सहि द्वाराइ, बहिरेव गरवा तसवलोक<sup>३</sup>  
खामि । (इति तथा करोति ।)

(ततः प्रविशति वक्ष्यमाण-स्वरूपो बलदेवः)

[गीत सं० — २३]

रितु - बल - तिमिर विनाश दिनेस ।

रोहिणि - नन्दन देल परबेल ॥

गौर वरन सगु अति अभिराम ।

देखइते भुवन<sup>४</sup> मनोहर राग ॥

नव नीरद सम नील इकुल ।

विमल कनक - भूषण बहुमूल ॥

ब्राह्मि - मदै घूम लोचन लाल ।

एक सवण - कुण्डल सुविशाल ॥

रस<sup>५</sup> लस जोठ नहि, काण सरीर ।

होला रस सालस यदुधीर ॥

श्रीकृष्णः—दूर मे कि छगहि ?

दीवारिकः—द्वारक समीप आबि गेलाह ।

श्रीकृष्णः—(सहर्षं हरवरायल ऊठि) तखन द्वारसं बहारे जाय देखैत छिनि ।  
(तहिना करैत छथि ।)

(आगू वर्णनीयरूप मे बलदेव प्रवेश करैत छथि ।)

गीत सं० - २३

रितुवल = शत्रुक सेनाखपी अन्धकारक नाशक सूर्य । रोहिणितन्दन  
= रोहिणीक पुत्र बलदेव । अभिराम = सुन्दर । भुवन मनोहर = संसार मे  
सुन्दर । रस = वलराम । नीरद = मेघ । इकुल = नक्षत्र । बहुमूल = बहुमूल्य ।

४ - देखइत सूर्य - क । ५ - घसल सज्जोठ - क ख ।



हलधर हल रमापति भान ।

सिंह बरेन्द्र सकल रत्न जान ॥

श्रीकृष्ण—(समाहित्वा<sup>१</sup> प्रणम्य च करे गृहीत्वा समुपवेश्य स्वयमपि समुपवि-  
श्य) दीवारिका ! विज्ञाप्यतां यादवैः सार्वं महाराज उग्रसेन, तमा-  
यात<sup>२</sup> आर्य इति ।

(स च तथा कृतवान् । ततः प्रविशति यादवैः सार्वं राजा  
उग्रसेनः । तत्र गीतम्—)

[गीत सं-२४]

हरिपद<sup>३</sup> कमल मधुर मधुरेश ।

लक्ष्मेन भूपति परवेश ॥

कवक किरीटे मनोहर माध ।

<sup>४</sup>चहुदिस यादवगण सखे साथ ॥

गूधु, कृतधर्म, विपुधु, अक्षर ।

चक्रदधः सत्यक अतिशूर ॥

चित्रक, सारन, वीर सुदेव ।

भुञ्जकार<sup>५</sup>, राजा अधिदेव ॥

यादवि-गदे<sup>६</sup> = मदिशक अमाध सी । एक = अद्वितीय, अनुपम । सखत = काम-  
से । रत्न लस जोठ नहि = ठीर मुखवाले छनि ।

हाम्पा = मधिरा । सामलस = अलसायल । यदुवीर = वलेशीम ॥

श्रीकृष्ण—(आलिङ्गन ओ प्रणाम कर हाथ धम बेसाय अपनहुँ बेसि) दीवा-  
रिक ! तब यादव ओ महाराज उग्रसेनके सूचित करहु जे आर्य  
(वलदेव) आधि गेलहु ।

(दीवारिक गहिना करैछ । तखन यादवसभक संग राजा  
उग्रसेन प्रवेश करैत छनि ।) ताहिठाम गीत—२४

हरिपद-कमल-मधुर = श्रीकृष्णक चरणकमलक भीरा । मधुरेश = मधु-  
रसक राजा । कवक किरीटे = सोना ओ रत्न सी । अरिसेन = शत्रुक सेना ।

१ - साहित्य - ख । ७ - × × × . क । ८ - हरिक संग अपने मधुरेश -  
क । ९ - चौदिस . क । १० - तहु कारण राजा - क ।

गध, सातकि रातदुसव, प्रसेन ।

जसु भुजवले कनिशा अरिसेन ॥

मंदर, सुफलक, विदूरथ, कच्छ ।

नृप बृहदुर्ग समर निरसक ॥

निपुन गवेदन शतवनु वीर ।

निवृत शत्रु, आहुव अतिशीर ॥

यादव सकल कहव जे जान ।

हरिपद प्रनत रमापति भान ॥

वलदेव-श्रीकृष्ण—(उत्थाय) इहं नृपसिंहासनमुपविश्य अलङ्करोतु महाराज  
उग्रसेनः ।

उग्रसेन—तदाऽऽकाशपतो देवदेवी । (इत्युपविशति) ।

श्रीकृष्ण—(वलदेवं प्रति) आर्य ! स्वागतं ते ।

वलदेव—एवमेतत् ।

श्रीकृष्ण—तात ! तन्वाद्यः सुखेन सन्ति ?

वलदेव—भवदीय गुणान् श्रीतापस्तो वृजभुवि सर्वे सुखेनैव निवसन्ति ।

(ततः प्रविश्य दीवारिकः)

समर = युद्ध जे निपुन रक्षेन शतशत्रु = शत्रु तकरा जे प्रवीण राजा सतश-  
त्रु निवृत शत्रु = शत्रु के पराजय करनिहार । आहुव = युद्ध में ॥

वलदेव ओ श्रीकृष्ण—(ऊठि) एहि राजसिंहासन पर बैस सोभित करधु महान  
राज उग्रसेन ।

उग्रसेन—जे आज्ञा धेधि हुनु अगवान । (बैसैत छनि ।)

श्रीकृष्ण—(वलदेवक प्रति) आर्य ! अहोकर स्वागत हो ।

वलदेव—देस ।

श्रीकृष्ण—तात ! तन्व आदि सुख सँ छथि ?

वलदेव—अहोकर गुणसभक शान करैत जजमे गम मुखहि सँ बसैत अछि ।

(तखन दीवारिक प्रवेश करै)



दीवारिकाः—देव ! एको विअवरो <sup>११</sup>पदीहारभूमिम् चिट्ठिदि <sup>१२</sup> । [देव  
एको द्विअवरः प्रसीहारभूमी तिष्ठति ।]

श्रीकृष्णः—(स्वगतम्) तेन कुण्डिनपुरादागतेन भवितव्यम् । प्रागेव हरि-  
वत्सभेतोक्तम् । (प्रकाशम्) इत् <sup>१३</sup>प्रवेशम् । (ततः प्रविशति  
द्विजः । श्रीकृष्णं वलदेवं च प्रणम्य चतुः श्रीकृष्णाय वदति । स  
च वलदेवाय वत्सवान् ।)

वलदेवः—(“भूयो भूयो” इत्यादि पद्यद्वयं [श्लोकसं० १३, १४] )  
वाचयति ।)

(सर्वे सादरमाकर्णयन्ति)

उग्रसेनः—द्विजराज ! कदा भविष्यति तद्दिनम् ?

द्विजः—अष्टारभ्य तृतीय-दिने । (श्रीकृष्णं प्रति) विशेषतस्तु वाचिकमभि-  
हितं नृपधीमकेन ।

श्रीकृष्णः—वत्सव्यं तत् ।

द्विजः—(पक्षीरावेदयति -)

दीवारिक—देव ! एक ब्राह्मण दोआरि पर टाडु छधि ।

श्रीकृष्ण—(मनहि मन) ओ कुण्डिनपुर सँ आयल होयताह । पहिनहि हरि-  
वत्सभ कहने छलाह । (सुनाक्य) जरदी प्रवेश करावहु ।

(तखन ब्राह्मण प्रवेश करैत छधि । श्रीकृष्ण ओ वलदेवकेँ प्रणाम कय  
चिट्ठी श्रीकृष्णकेँ दैत छधि आ ओ वलदेव केँ द्य देलनि ।)

वलदेव—(“भूयो भूयो” श्लोकसं० १३, १४ दुनु पद्य बोलैत छधि ।)

(सभकेओ आदरपूर्वक सुनैत छधि ।)

उग्रसेन—द्विजराज ! कहिआ होयत ओ दिन ?

द्विज—आइ सँ लग तेसर दिन मे (श्रीकृष्णक प्रति) विशेष कय क मोखिक  
समाद कहलनि अछि राजा भीष्मक ।

श्रीकृष्ण—बाजु से ।

११ - पवहार - छ । १२ - तिष्ठेव - छ । १३ - ० - छ ।

तमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय यः <sup>१४</sup>

सुजयकथयस्थकिलं धराचरम् ।

भारावताराय भूवोऽधुना हरि-

लब्ध्वाऽवतारो वसुदेव-गन्दिरे ॥११॥

अभि च,

जानामि कृष्णं भगवन्तमाज्ञं

जानात्वसौ नैव विपूतबुद्धिः ।

स्वमी मदीयस्तनयो मदान्ध-

स्तथाऽन्यस्ये स्वकृपा <sup>१५</sup> विधेया ॥१२॥

अभि च,

स्वयंवरेऽस्मिन् तरदेवतं कुले

पुरं सप्त-स्य मदीयमेतत् ।

तथा विधेयं स चमोरथो मया

दृष्ट्वा भवन्तं परिपूतिमेति मे ॥१३॥

द्विज—(पद्य सभक द्वारा आधेदित करैत छधि ।) :—

ओहि जगदीश्वर के नमस्कार करैत छी जे सम्पूर्ण चर ओ अचर संसारक  
सृष्टि करैत छधि, पालन करैत छधि तथा भक्षण (संहार) करैत छधि ।  
सएह हरि पृथ्वीक भार उतारवाक लेल वसुदेवक घरमे अवतार लेने  
छधि ॥११॥

आओरो—

हम आदि ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् केँ जनैत छियनि । सुदा, हमर पुत्र  
मथ्यो अन्ध सूर्य स्वमी नहि जनैत छनि । तयो अपन कृपा अवश्य  
करथि ॥१२॥

आओरो—

भनुष्य ओ देवतासँ भरल एहि स्वयंवर मे हमर एहि नगर मे आवि  
तेना करी जाहि सँ हमर ओ मनोरथ आनेकेँ देखि परिपूर्ण हो ॥१३॥

१४ - ० - छ । १५ - सुकृपा - छ ।



श्रीकृष्णः—सादृश-गहाभ-गस्य इदमेव वक्तुमुचितम् ।

बलदेवः—अहो ! वाम्बिधान-नैपुण्यं कुण्डिनेश्वरस्यः १२ । द्विजराज ! अवश्यं यास्यामः । राजानः किं कुण्डिन<sup>१३</sup>समायताः ?

द्विजः—अथ किम् ? बहवो नृपाः गजाश्च-रथ-पदातिवृन्दैः सह तत्रैव मिलिष्यन्ति ।

बलदेवः—महाराज ! कायवाधिन ! सज्जीभवन्तु सर्वे चतुरङ्गबलैः सह यादवा-स्तत्र गमनाय ।

उग्रसेनः—देवदेव ! अनुजानीहि भीमं गृहं गत्वा तथाऽऽवरणाय । (इति यादवैः सह निष्क्रान्ताः ।)

बलदेवः—मयापि सम्प्रति विद्यामाय गम्यते ।

श्रीकृष्णः—यदभिरोधते भवति । (इत्युत्थाय तमनुनीय, पुनरुपविश्य च) द्विज-राज ! कीदृशी वर्तते सा कुमारिका यामभिलक्ष्य सकल-राजस्यम-ण्डलीं प्रचलिता १४ कुण्डिनं प्रति, तदभिजायते १५ भवता ?

श्रीकृष्णः—ओहन महत्पुरुषक इवेह कहव उचित-धिक ।

बलदेवः—अहो ! कुण्डिनक राजाक वचन-विन्यासक पटुता ! द्विजराज ! हमरालाकनि अवश्य जायव । राजासव कुण्डिनपुर पहुचि गेलाह की ?

द्विजः—त आओर की ? बहुत राजा हाथी-घोड़ा-रथ-सेनासभक संग ओतहि भेटसाह ।

बलदेवः—महाराज वाइवराज ! चाल अऊर रथ-घोड़ा हाथी-पैदल संयुक्त सेनाक संग सकल यादव ओतय जयवाक हेतु तैयार होय ।

उग्रसेनः—देवदेव ! धर जाय सकर व्यवस्था करवाक हेतु हमरा आज्ञा दिय । (यादवसभक संग बहार भय गेलाह ।)

बलदेवः—हमहु एखन विधामक हेतु जाइत छी ।

श्रीकृष्णः—जे तीक लगय अहाँके । (ऊठि हुनक अनुसय कय, पुनः वैसि) द्विज-राज ! केहुन छपि ओ कुमारी जनिक उद्देश्य कय सकलराजाक समूह कुण्डिनपुरक हेतु थिदा भेल अछि, से अहाँके बुझल अछि ?

१६ - कुण्डिनस्य - क । १७ - कुण्डिनसमायताः - क । १८ - कुण्डिन - क । १९ - तदभिजायते - ख ।

द्विजः—देवदेव ! कथं न जानामि, किन्तु दृष्टेय मया । योत्तव्यं तस्मीदृश्यं देव-देवेन । (इति भीतेवायेदगतिः—)

[गीतसं०--२५]

राजकुमारि देखल हमे १६, विधिवस सखि-सङ्गे ।

निष्ठा करे कुन्दि मनोभव, सिरिजल तसु अङ्गे ॥

तड़ित छपर शशि, ता पर, जलधर अभिरामे ।

से जनि मेदनि संचर, तछो पाव उपामे ॥

असन कमल मद मातल, भम मधुकर भोरा ।

मनसिज व्याघ्र उड़ाओल, की १७ लखन-जोरा ॥

कीदहु मुख-शशि-पीउप, विह युगल चकोरा ।

तसु खोचन देखि मानय, संशय पहुँचै १८ भोरा ॥

पञ्चज-कोरक निन्दक, तसु उरसिज—काँती ।

ते जनि जल वशि अहोनिशि, तप कर भलभाँती ॥

मध्य विनिन्दक केहरि, गिरिकन्दर भेजा ।

मृदु लख-युग देखि करिवर, लज्जित जनि भेला ॥

हिस—देवदेव ! निवेक नहि जगल छी, हम त हुनका देखये कदलियनि । हुनक सौन्दर्य भगवान् सुनल आओ । (गीतक द्वारा आशेषित करते छथि)।—

गीतसं०--२६

विधिवस=सोयोग से । निष्ठा करे=अपना हाथे । कुन्दि=क्षराजिके, निष्कत वनाय (क्षणन, कुन्दन) । तड़ित=विजलोका । शशि=चन्द्रमा । मेदनि=पृथ्वी पर । असन कमल=लाल कमल पर । भम=पूरेत अछि । मधुकर=भोरा । भोरा=शुद्ध हृदयक, भोलाभाला । मनसिज व्याघ्र=कामदेवस्वपी शिकारी । मुख-शशि-पीउप=मूढलपी चन्द्रमाक अगत । युगल=ओड़ा । पञ्चज-कोरक=कमलक कलीक । उरसिज=स्तन । मध्य=देहुक बीच (होरक निन्दा करयल) । केहरि=सिंह । मृदु=कोमल । लखयुग=दू

२० - हम - क । २१ - तकि - क । २२ - क्ष । २३ - पङ्क - ख ।



धल-पङ्केरु-गञ्जित, तसु वरण निरेली ।  
अपनहि अबनत भय फुल, ते बुझिअ विसेली ॥  
गमने मराल वधूगन, तुलना नहि पावे ।  
सुमति रमापति मने गुनि, खुमनि सा गावे ॥

श्रीकृष्णः—द्विजराज ! ततस्ततः कल्पतां विशेषतस्तस्याः शरीरलोभा ।  
द्विजः—अपि च,

[गीत सं०—२६]

दिन दिन छिन होअ पुरन<sup>२३</sup>-चन्द ;  
पुरल परागहि<sup>२४</sup> देखिअ अरविन्द ॥  
कमल - युगल, विधु नहि एकठाम ।  
फी लय देव तसु वचन उपाम ॥  
जजो विधि कोमल करवि प्रवाल ।  
नख पल्लव दुति रह<sup>२५</sup> चिरकाल ॥  
ताहि मुखा - रस वरधि अमूल ।  
तखने होअ तसु अधरक तुल ॥  
दालिम बीज हलने जिति लेल ।  
ते<sup>२६</sup> फलमध्य तिरोहिन भेल ॥

जौव । करिवर = हाथी । धल-पङ्केरु-गञ्जित = धलकमलके तिरस्कृत कर-  
वला । अबनत = झुकिके । गमने = गति (चलवा) है । मराल-वधूगन =  
हंसी ॥

श्रीकृष्ण—द्विजराज ! तकर बाद अहू विशेष कय हुनक शरीरक सोन्दर्य ।

द्विज—आओरो

[गीत सं०—२६]

छिन = क्षीण । पुरन-चन्द = पूर्णचन्द (नायिकाक मुँह) । अरविन्द =  
कमल के । कमलयुगल विधु = दू कमलक संग चन्द्रमा एकठाम जमा भेल नहि  
रहै छथि । विधि = ब्रह्मा । प्रवाल = मृगा । दुति = चमक । मुखा = अमृत ।

२३ = पुनः - ख । २४ = परागे देखिअ - ख । २५ = रह - ख ।

उरसिजे<sup>२७</sup> ओतल सिरिफल - भास ।  
ते<sup>२८</sup> कर सतत अकास - निवास ॥  
पीठि उपर बेनी<sup>२९</sup> भल छाज ।  
तसु प्रतिविम्ब रोमावलि साज ॥  
हरिपद प्रनत रमापति भाज ।  
सिंह नरेन्द्र राकल रस जाज ॥

श्रीकृष्णः—द्विजराज ! विचिन तस्याः सोन्दर्यमावेदयति भवान् । अहो  
विधातु निर्माणकुशलता तवापि च ब्रह्मिष्ठगता । ततस्ततः ?

द्विजः—अपि च,

[गीत सं०—२७]

हे माधव ! अपहन तसु निरमाने ।  
बेखइते<sup>३०</sup> जत संसय मन अवतर, मुनिअ कहिअ अवधाने ॥ ध्रुवा<sup>३१</sup>  
कनक-लता बिज युगल सिरिफल, उपर उचित हिमधामे<sup>३२</sup> ।  
विधुमण्डल दुइ खज्जन ता पर, मदन धनुष अभिरामे<sup>३३</sup> ॥  
तथिहु<sup>३४</sup> उपर मनिआरि<sup>३५</sup> भुजङ्गनि, नील वरन तसु काँती ।  
युगल विम्ब फल मध्य मनोरम, दालिम बीजक पाँती ॥

अमूल = अमूल्य । अधरक तुल = ठोरक तुल । दालिम = दाड़िम, अनार ।  
दशन = दाँत । तिरोहित = तुकावल । उरसिज = स्तन । सिरि-फल = बेल ॥

श्रीकृष्ण—द्विजराज ! अद्भुत हुनक सोन्दर्य वर्णित करै छी अहाँ । अहो  
विधाताक वनधवाक चतुराई ओ अहूँक वचन कुशलता । तकर  
बाद ?

द्विज—आओरो

[गीत सं०—२७]

निरमाने = बनावट, गढ़नि । अवतर = अवतल अलि । अवधाने = साव-  
धान । कनकलता = सोनाक लसीका । युगल सिरिफल = एक जोड़ा बेल ।  
हिमधाम = चन्द्रमा । विधु = चन्द्र । मदन = कामदेव । मनिआरि भुजङ्ग-  
नि

२७ = पीठिक उपर बेनी छाज - ख । २८ = धाम - ख ।

२९ = राम - ख । ३० = मनिआरि - ख ।



कनक मृणाल विलास नाल बिनु, लोहित युग अरविन्दा ।  
तथिहुँ जपर दसविध भय ऊगल, बिनल द्वितीयक चन्दा ॥  
भय विपरीति कदलि-युग धिर रह, बिनु दले परम विलास ।  
थल-अम्भोज मलानि रहित अति, चित्र देखल चिरकाले ॥  
के वरनत तमु रूप अशम्भव, सुमति रमापति भाते ।  
सिंह नरेन्द्र महीपति रसमय, दुक्त सब गुनक निधाने ॥

श्रीकृष्णः—द्विजराज ! सम्यगभिहितं भवता । युक्तं नृपकुमाराणां तद्वच-  
लोकनस्पृहा ।

द्विजः—किञ्च,

निमित्तिपारम्भवति मन्तोभू लविषयमाकुण्ड जगत्पथः<sup>३०</sup> ।

सारं<sup>३१</sup> समुद्र, व्यसतः प्रयत्नात् तां सर्वसौख्यमयीं प्रकारं ॥१॥

नि = मणिवाली सापिन । विम्ब = तिलकोड़ । लोहित = लाल । युग =  
दुइ । अरविन्द = कमल । दसविध = दस तरहक । भय विपरीत = उनटा  
भए । कदलि युग = दुइ केराक धम्ह । दले = पानसँ । थल अम्भोज =  
स्थलकमल । (सोनाक लता भेल नायिका, ताहि मे श्रीफलक जोड़ा स्तन,  
ऊपर ऊगल चन्दा मुँह, दुइ खज्जन आँखि, घनुष काजर, सापिन दुनु  
भौंह, मणि सिन्दूरक टोय, तिलकोड़ टोर दाढ़िमक बीज दाँत, मृणाल दाँहि,  
दुनु कमल हाथ, दस चन्दा दसो नह ओ केराक धम्ह जाँ भेल ।)

श्रीकृष्ण - द्विजराज ! यथार्थ कहल अहाँ । उचिते छनि राजकुमार लोक,  
निके हुनक देखवाक इच्छा ।

द्विज—आओरो—

सुन्दरीक बनपवाक विचार कय कामदेव तीगू लोकक सुन्द-  
रता समेटि, सारभाग बहार कय सतपुर्वक ओहि सुन्दरीक रचना  
कबलनि ॥१॥

श्रीकृष्णः—अतः परं स्वयंभवाय यास्यामः कुण्डिनम् । किन्तु स्वमी नृपसभा-  
यामनादरं करिष्यति । अतस्तद्गृहगमनं न रोचते । तत्र य  
कोऽभ्युपायः ?

द्विजः—प्रथमतो देवदेवेन कुण्डिनपुर-सन्निधौ गत्वा मन्त्रान् स्वेयं, यावज्जालमा-  
र्गेण हविमयी त्वागवलोकयति । ततः कथ-कैशिकाभ्यां सर्वं भवदर्थं  
सम्पादितमस्ति । तत्राऽवस्थातव्यम् ।

श्रीकृष्णः—(दीवारिकं प्रति) एतस्मै द्विजाय विश्वामार्थं शोभनं मन्दिरं  
हेयं<sup>३२</sup>, दातव्यं च<sup>३३</sup> सत्कार्यं-सर्वगुणधारम्, यथाऽसौ मार्गशिवं  
विस्मरति तथा परिचरणीयम् ।

दीवारिकः—सर्वं कर्जं मए कदम्ब । [सर्वं कार्यं मया कर्तव्यम् ।]

(द्विजः प्रणम्य निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये—भो ! भो ! निज-दीर्घ-विक्रम-सन्तजिताऽशेषशत्रो मादवाः !

पुरन्दरेणाऽप्यनुलङ्घितशस्त्रो महाराज-श्रीमदुभयसेनो बः समादिशति—

श्रीकृष्ण—तँ आव स्वयं अद्य जामय कुण्डिनपुर । मुदा, स्वमी राजसभा  
मे अनदर करत । अतः ओकर ओहिठाम जामय नहि नीक लगैत  
अछि । ताहि मे कोन उपाय ?

द्विज—गहिने देवदेव स्वयं कुण्डिनपुरक समीप जाय कनेक रकल जाम, यावत्  
खिड़की सँ हविमयी अपनेके देखि लेथि । तकर बाद कथ ओ कैशिक  
नामक राजा, सभ किछु अपनेक लेल ओरिअओने छथि । ओतय रहल  
जाय ।

श्रीकृष्ण—(दीवारिकक प्रति) एहि बाह्यणके विश्रामक हेतु सुन्दर भवन दएह,  
ओ स्वागतक सभ सामग्री बहून्ह, जाहि सँ ई वाटक थाकनि के  
विसरि जाथि तथा दिनक ठहल करिहह ।

दीवारिक—सभ काज हम करब ।

(बाह्यण प्रणाम कय बाहर गेलाह ।)

(नेपथ्य मे—हे हे ! अवन बाहिङ्गी डंठाक पराक्रमसँ सकल शत्रुके भय  
भीत बननिहार यादवलोकनि ! इन्द्रहुक द्वारा जनिक आदेशक पल्लवन नहि  
भय नकल से महाराज श्रीमान् उग्रसेन अश्लोकानिके आदेश देत छथि—



सृष्टिम् - रोचिरभूद् विगतद्युति-

नभसि नो विलसन्ति च तारकाः ।

अरुणिमेव सुरेश - दिगप्यभूत्

सपदि तून्मिशो रजनी गता ॥१६॥

तेन च,

मोच्यस्तां मन्दुराभ्यो ज्वजित-पवना मञ्जुवर्णास्तुरङ्गाः

धोव्यस्तां स्पन्दनेषु द्रुतमथ विगलद् दानमत्ताः करीन्द्राः ।

वारीभ्यो मोचनीयास्तदनु च विविधैर्भूषणैर्भूषणीयाः

प्रस्थातव्यं यद्यद्वि मधुरिषु-सहितैर्मन्दिरं भीष्मकस्य ॥१७॥

(पुनर्नेपथ्ये दुन्दुभिध्वनिः)

श्रीकृष्णः - (सभागृहनामस्य) दाहक ! तुरङ्गमैः संयोज्य तूर्णं मदीयं श्वमा-  
नय ।

दाहकः - (प्रणम्य रथं सज्जोक्त्याऽऽनीय) देवदेव ! एष मया सज्जोक्तो रथो  
आरोहस्वायुष्मान् ।

शीतल प्रभा बरुवा (चन्द्रमा) कान्तिहोम भय गेलाह, आकाश मे तरेण  
रोहो नहि अलि, पूव दिना ललोन लगीत अलि ओ ई राति शीघ्र समाप्त भव  
मेल ॥१८॥

आ ताहि सै-

वेगे ह्याके जितनिहार सुन्दर रंगक घोड़ासभ के घोड़ासार (मन्दुरा)  
सैं खोलि देल जाय ओ रथसभ मे जटदय जोति देल जाय, चब्रेत मवसैं मत्त  
बड़का हाथीसभके हथिसार सैं खोलि देल जाय ओ अनेक अलंकार सैं सजा-  
ओल जाय आ तखन अहाँलोकनि कृष्णक संग राजा भीष्मकक भवनक हेतु  
प्रस्थान करैत जाइ ॥१९॥

(केर नेपथ्य मे रणवाद्य बजैत अलि)

श्रीकृष्ण - (सभाभवन आवि) दाहक (कृष्णक सारथी) ! घोड़ा सभ सैं युक्त  
कय भट दम हमर रथ अनू ।

दाहक - (प्रणाम कय रथ सजावके आदि) महार देवता ! इयेह हम रथ तैयार  
कयल अलि । खिरजीवी अपने एहि तर चकल जाओ ।

(श्रीकृष्ण) बलदेवसुरोन् च नगररक्षार्थं प्रतिनिवर्त्य स्वयं रथारो-  
हणं नाटयति । ततः सर्वे प्रचलिताः । तत्र गीतम् -)

[गीतसं०-२८]

कुण्डिन<sup>३३</sup> नगर चलल गोविन्द ।

सूनि<sup>३४</sup> स्वयंवर अतिसानन्द ।

सहस्र<sup>३५</sup> सहस्र धनु रथ, मातङ्ग ।

तुरग<sup>३६</sup> - निवह बहुविध तसु रङ्ग ॥

जूथे<sup>३७</sup> जूथे<sup>३८</sup> कत चलल पदाति ।

देखि चकित होअ सकल अराति ।

सेनापति सवे यादव दौर ।

छव - धरम रत - कसम सुधीर ॥

दुन्दुभि भेरी शंख मृदङ्ग ।

अतिरल बाजन बाजय सङ्ग ॥

भीमसदृश नगर सनिधान ।

हरि उपगत भेल दिन अवसान ॥

हरिपद प्रनत रमापति भान ।

बुभु नृप सिंह नरेन्द्र सुधान ॥

(श्रीकृष्ण, वदनेन तथा उपसेन के नगरक रक्षाक हेतु बुझाय  
स्वयं रथ पर चढ़वाक अभिनय करैत छथि । तखन सभ चललाह ।  
ताहि मे गीत ।)

[गीतसं०-२९]

सहस्र = सहस्र, हजारक हजार । मातङ्ग = हाथी । तुरग-निवह =  
घोड़ाक समूह । जूथे = भुञ्ज बाहि । पदाति = पैदल सेना । अराति = शत्रु ।  
दुन्दुभि भेरी = डोल ओ मगाड़ा । अतिरल = लगातार । सनिधान = निकट ।  
हरि = कृष्ण । उपगत = उपस्थित । दिन अवसान = दिनान्त मे ।

३३ - कुण्डिन - छ । ३४ - सूनिज - क । ३५ - सहस्र सहस्र - छ । ३६ -  
तुरङ्ग - छ । ३७ - जूथ जूथ - क ।



श्रीकृष्ण - एवम् नृपभीष्मकस्य राजधानी द्रष्टव्या भवद्भिर्मयापि । तत् प्रा-  
सादसिंहित-रथाया मनाक् स्थित्वा वैनतेयमनुचितमामि ।  
(इति सैन्धाद् बहिर्भूय रथामध्ये स्थितः । शङ्खञ्च नादयति ।)  
(ततः प्रविशति गौधम्यता रविमणी, तस्याम्नो मुदक्षिणा, सुशोभना च ।)  
मुदक्षिणा - सहि सुशोभने ! अचरितं तद्भाषे<sup>४२</sup> भगो राजसदो सुशोभना ।  
[सखि ! सुशोभने ! आश्चर्यं !! तद्भागमार्गं शङ्खशब्दः श्रूयते ।]  
सुशोभना - सहि मुदक्षिणे ! भक्षयदो सिरिकण्डहस पाञ्चजण्यं धिज<sup>४३</sup> वज्रि-  
ज । अण्डहस पा<sup>४४</sup> कड एरिसो सदो । तयो बलहोए चिटिठअ  
मए<sup>४५</sup> सह अवलोएहि । [सखि मुदक्षिणे ! भगवतः श्रीकृष्णस्य  
पाञ्चजण्यमिव ताद्यते । अण्डहस न कस्यापि ईदृशः शब्दः । ततो  
बलस्या स्थित्वा मया सह अवलोक्य ।]

मुदक्षिणा - (अवलोक्य सान्त्व्य) सहि एको क्लृ अहिणव-जलहर इव साम-  
लङ्को विविह-मणि-जडिअ-कणअ-किरीट-मण्डिअ-मत्स्यओ निअ-

श्रीकृष्ण - इयेह राजा भीष्मकक राजधानी थिक जे अहाँलोकनिके ओ हमरो  
देवक थिक । त कोठाक सदले गली मे अनेक रक्कि मण्डक प्रतीक्षा  
करैछ छी । (सेना सँ बहार भय गलीक बीच भे ठाड़ भय शङ्ख  
बजवैत छथि ।)

(तत्पश्चात् प्रवेश करैत छथि कोठा पर ठाड़ रविमणी ओ हुनक सखी मुद-  
क्षिणा ओ सुशोभना ।)

मुदक्षिणा - सखि सुशोभने ! आश्चर्य !! बौद्धिक वाट पर सप्तक शब्द सुनि  
पड़ेछ ।

सुशोभना - सखि मुदक्षिणे ! भगवान् श्रीकृष्णक पाञ्चजण्य शङ्ख जेना बजैत  
अछि । दोसर कोनो शङ्खक एहन शब्द सहि होइत छैक । तेँ  
छत पर ठाड़ भय हमरा संग देखह ।

मुदक्षिणा - (देखि आनन्दपूर्वक) सखि ! ई तँ नवीन मेघ मनक श्यामल देह<sup>४६</sup>  
बला, अनेक मणि जड़ाओल संगतक सुशुभ गाय पर रखने अपन

४२ - तराअ - क खारेह ० ० ख । ४० - अण्डहसक कबुक, अण्डससक कबुक ।

४५ - सहीए - क ।

कादवण -<sup>४७</sup> विवेक -<sup>४८</sup> सम्मोहितासेस-परिअणो<sup>४९</sup> र्होकिर त्रिहु<sup>५०</sup>  
अणैवक-मणहरो अपुवो पुरिसो बीसदि । एसो जेव सिरी-  
कण्हो ओदिति । [सखि ! एए खलु अभिनव-जलहर इव स्या-  
मलाङ्को विविध-मणि-जडित-कनक-किरीट-मस्तक-निजकटाक्ष-  
विशेष - सम्मोहितासेवपरिजयो रथोपरि विभ्रवनेक-मनोहरः  
अपूर्वः पुरुषो दृश्यते । एए एव श्रीकृष्णो भवतीति ।]

रविमणी - सहि ! कि दाणि अलीअ-बजनेहि मे समरसासेरि । कुदो मे  
तारिसं भाअयेअ ? [सखि ! किमिदानीम् अलीकावचने मी  
समाश्वासयसि ? कुनो मे तादृश भाग्यवत् ?]

(ततः प्रविशति वैनतेयः)

वैनतेय - (प्रणम्य) भगवन् देवदेव ! किमर्थमनुचिन्तितोऽस्मि ?

श्रीकृष्ण - सम्प्रति विश्वभूपुरं गत्वा कथ-केशिकाभ्यां महाभयं विज्ञाप्य भावता  
सीमरूपेण तत्र स्थेयम् । अहमपि सपरिवारस्तत्पुरमागमिष्यामि ।  
बान्धव मया तत्रैव भवने निवेद्यम् ।

कटाक्ष प्रहृष्टि सकल परिवारके मोहित कयने, रथ पर तीनूलोक  
मे सबसे बेसी सुन्दर अपूर्व पुरुष देखाइत छथि । इयेह श्रीकृष्ण  
भय मकेत छथि ।

रविमणी - सखि ! की एखन व्यर्थक बात सभा सँ हमरा परतारैत छह ? कतय  
सँ हमरा ओहन भाग्य होयत ?

(तत्पश्चात् मण्ड प्रवेश करैत छथि ।)

वैनतेय - (प्रणाम कय) भगवन् परम देवता ! कियेक बजाओल अछि (स्य-  
रण कमल अछि) ?

श्रीकृष्ण - एखन विदर्भ-नगर जाय कय ओ कैशिक महाराज के हमरा आन-  
मनक सूचना यथे अहाँ सान्त्वयय ओतय रही । हमहूँ सपरिवार  
कोहि नगर आएव, ओतहि अहाँके जे कहवाक अछि ते कहब ।

(मण्ड प्रणाम कय बिदा भाव गेलाह ।)

४२ - कडकथ - ख । ४३ - विवेक - ख । ४४ - परिअणो - क ख ।



(गुरुः प्रणम्य प्रचलितः)

सख्यो—भट्टिदारिए ! दिट्टिआ बड्डसि । एसो सच्च सिरीकण्हो भोदि । गुरुं दंतणेण अम्हाणं आसओ पणट्ठो । ता उट्ठेहि, उट्ठेहि, अवलोएहि कण्हं । [ भट्टिदारिके ! दिट्टिआ बड्डसि । एष सत्यं श्रीकृष्णो भवति गुरुददर्शनेन अस्माकं संशयः पूनष्टः । तदुत्तिष्ठोत्तिष्ठ, अवलोक्य श्रीकृष्णम् । ] (इति करयो गृहीत्वा उत्थापयतः ५५ ।)

रुक्मिणी—(अवलोक्य मनसा पूज्य च सानन्दं सखीभ्यां सह गायतिः—)

[गीतसं०—२६]

पुरुष सुकृते हमे आज । हे सखि ! नयन देखल गदुराज ॥  
नव घन सामर देह । हे सखि ! हेरितहि उपजु सिनेह ॥  
पीत वसन वनमाल । हे सखि ! भूषन सकल दिसाल ॥  
इन्दु-वदन अभिराम । हे सखि ! जनि सहि अभिनय काम ॥  
विहि विनिवेदिअ तोहि । हे सखि ! मिलल देव पुन ५५ मोहि ॥  
सुगति रमावति भान । हे सखि ! मैथिल नृप रस जान ॥

दुनू सखी—राजकुमारी । भागमति छी । इयेह सत्ते श्रीकृष्ण थिकाह । गुरुके देखि हमरालोकनिक सन्देह दूर भेला ते उठू, उठू, देखू श्रीकृष्णके । (दुनू हाय धय उठवैत छथिन्ह ।)

रुक्मिणी—(देखि मनसँ पूजाम कय आनन्दपूर्वक सखीक संग गवैत छथिः—)

गीतसं०—२७

पुरुष = पहिलुका । सुकृते = पुण्य सँ । गदुराज = श्रीकृष्णके ।  
नवघन-सामर = नवीन भेषक समान श्यामल । पीत वसन = पीत वस्त्र । इन्दु-वदन = चन्द्रमाली मुख । अभिराम = सुन्दर । जनि = जेना । सहि = पृथ्वी पर । काम = कामदेव । विहि विनिवेदिअ = अपन भाग्य बुझवैत छी ॥

सुरक्षिणा—सहि रुक्मिणि सिरिकण्हं पेयिअअ कोरिसं भोएहि हिअअ ता पुनो बि कहैहि । [ सखि रुक्मिणि ! श्रीकृष्ण प्रेक्ष्य कीदृश भवत्या हृदयं, तत् पुनरपि कथय । ]

रुक्मिणी—सुनहु पिअसहो । [ शृणोतु द्विपसखी । ]

[गीतसं०—२८]

सुनि जनिक ५६ गुणगान ना । मन न सोहाएव आन ५६ ना ॥  
कमल-नयन गदुराज ना । बिबिबस ५६ देखल आज ना ॥  
वदन-कलानिधि देखि ना । मन मोर हरल विशेष ना ॥  
कि कहव मोहन-रस ना । कोटि मदन अनुस्रप ना ॥  
तहित बिआरिअ काज ना । जे होअ हरिक समाज ना ॥  
सुगति रमावति भान ५० ना । मैथिल नृप रस जान ना ॥

सुरक्षिणा—सहि ! जइ एरिणी देए अस्सि नत्ती बट्टदि तदो अस्ति जजेव कण्हो पाणिगहं करिस्सदि । जओ एसो भक्तवत्सलो देखी । [ सखि । यदि एतादृशी देवेऽस्मिन् भक्ति वत्त ते तदा अटित्येव कृष्णः पाणिग्रहं करिष्यति । यत एष भक्तवत्सलो देवः । ]

सुरक्षिणा—सखि रुक्मिणि ! श्रीकृष्णके देखि केहन अहाँक हृदय भेल अछि से केरो कहू ।

रुक्मिणी—सुनहु द्विपसखी—

गीतसं०—२९

विधिबस = भाग्यसँ संयोगसँ । वदन-कलानिधि = मुखचन्द्र ।  
कोटि मदन = ऊँड़ोरो कामदेवक सह । हरिक समाज = श्रीकृष्णक सम्पर्क ॥

सुरक्षिणा—सखि ! यदि एहन भक्ति अहाँक एहि देव मे अछि ते कतदीये कृष्ण-विवाह करताह । कियेक ते ई भक्तवत्सल देव छथि ।



सुशोभना—सहि यदुक्तीराणां बलेहि अन्तरिदो देवदेवो, तदो उच्यविसम्ह ।  
[सखि ! यदुक्तीराणां बलैरन्तरितो देवदेवः, तत् उपविश्यामः ।]  
(इति सर्वा उपविशन्ति । इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति रुक्मिणीपरिणये कुण्डिनपुर-गमनं नाम तृतीयोऽङ्कः ॥

सुशोभना—सखि ! वीर यादवक सेनाक द्वारा अहं भय गेलाह देवदेव श्रीकृष्ण !  
ते बेसैत जाइ ।

(सब बेसैत छवि । तखन सब बहार भेलि ।)

रुक्मिणीपरिणय मे कुण्डिनपुरगमन नामक  
तेसर अंक समाप्त ॥

## अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतः कथ-कैशिकी)

[गीतसं०—३१]

|        |        |         |        |      |
|--------|--------|---------|--------|------|
| हरिपद  | भगत    | विदर्भ  | नरेश   | ।    |
| कथ     | कैशिक  | भूपति   | परवेश  | ॥    |
| कदए    | प्रनाम | भगत     | अनुरूप | ।    |
| अञ्जलि | बाधि   | निवेदधि | भूप    | ॥    |
| हमर    | भयन    | हरि     | करिअ   | समाध |
| चलिअ   | सकल    | यादवगन  | साथ    | ॥    |

चारिम अंक

(कथ ओ कैशिक प्रवेश करैत छवि ।)

गीतसं०—३१

हरिपद भगत—कृष्णक चरणक भक्त । विदर्भ नरेश—विदर्भदेशक राजा

|           |        |        |       |        |   |
|-----------|--------|--------|-------|--------|---|
| भगत       | बछल    | ससु    | भनति  | विचारि | । |
| अतिकइनामय | चलल    | गुरारि |       | ॥      |   |
| मुमति     | रमापति | भन     | परमान | ।      |   |
| भाव       | अधीन   | सदत    | भगवान | ॥      |   |

श्रीकृष्णः—(तद्गृहं भत्वा परिक्रम्यावलोक्य च) महाराज कैशिक ! सर्वे  
मदर्थं भवद्भक्त्या सम्यक् सम्पादितम् । किन्तु यादवेभ्योऽपि निवास-  
स्थान<sup>१</sup> देयम् ।

कैशिकः—देवदेव ! स्थानमिति कथमुच्यते ? किन्तु प्रागेव मया तैवामर्थं  
कृतानि मन्दिराण्येव सन्ति । (ततस्तदधिकारिणं पुरुषमाहूय)  
<sup>२</sup>व्यपदिश्यतां यादवेभ्यः प्रत्येकं निवासभवनं सम्पादनीयम् तत्र तत्र  
सर्वापचारः ।

पुरुषः—जं देओ आपदेदि । [यद् देव आतापयति ।] (इति तथा कृतवान् ।)  
कैशिकः—देवदेव ! इदं सिंहासनमासाद्योपविशतु देवदेव । इदं सिताच्छत्रमिमे  
चानरे च गृह्णाण ।

कथ-कैशिक । भगत बछल—भक्तवत्सल ।

श्रीकृष्ण—(हुनक घर जाय घूमि ओ देखि) महाराज कैशिक ! सबकिछु हमरा  
लेल अहाँ दुनू गोटा (कथ ओ कैशिक) नीकजकाँ तैयार कयने छी ।  
किन्तु यादवोलोकनिके<sup>३</sup> डेरा दियन्हू ।

कैशिक—देवदेव ! स्थान दियन्हू से की कहैत छी ? किन्तु पछिनहि हम हुनका  
लोकनिक लेल घरे धनबाय लेने छी । (तखन ओहि घरक अधिकारी  
के बजाय) यादवसभमे प्रत्येककेँ एक एक घर निर्धारित कय दिय-  
न्हू ओ सबसभ उचित सकलतामयीक व्यवस्था कय दियन्हू ।

पुरुष—जे सरकारक आज्ञा । (तहिना करैछ ।)

कैशिक—देवदेव ! एहि सिंहासनकेँ पाति बैसल जाओ भगवान् । ई उज्जर  
छत्र ओ ई दुनू चामर लेल जाओ ।



(श्रीकृष्णः समुपविशति । कथं कैशिकी श्रीकृष्णस्य चरणौ  
प्रधातमं तज्जलं शिरसि धत्तः, चामरे चादाप वीजयतः । उपचारे  
सम्पूज्य च गीतेन वाच्यमावेदयतः ।)

विहागरा [गीतसं०-३२]

पाप-निवह गेल, जनम सकल भेल, पदपङ्कज तुअ देखि ।  
रघु आगमने सकल कुल उधरल, मुकुत हलव कोने लेखि ॥  
माधव । सुनिअ बिनति बजराज ।  
पुलके पुरल तनु, हरप पुलिअ जनु, जहिन होअ मोहि आज ॥ १ ॥  
उत्पत्ति, पालन, प्रलयक कारन, तीन भुवन तुअ भार ।  
अमुर अंस नृपवंश विध्वंसन हेतु मनुज अवतार ॥  
रङ्गभूमि सिंहासन सङ्कट, जनु होअ भूप-समाज ।  
ते हृषे हरपित मय विनिवेदित, अङ्गसहित निज राज ॥  
चामर छन कनक सिंहासन, रतन कोष अवशेष ।  
सकल निवेदल दुष्ट सहोदरे, प्रात करव अभिषेक ॥  
कैशिक नृपति मुरारि भगति गति, सुमति रमापति मान ।  
सिंह नरेन्द्र विविध गुण विन्दक, मैथिल नृप रस जान ॥

(श्रीकृष्ण वैसेत छथि । कथं ओ कैशिक श्रीकृष्णक चरण  
पत्थारि ओकर जल माथ पर लेत छथि । चामर लय होकेत छथि ।  
पूजाक सामग्री सभ सँ पूजा कय गीतक द्वारा कथ्य आशय निवेदित  
करैत छथि :-

राम विहागरा - गीतसं० - ३२

निवह = समुह । उधरल = उद्धार भेल, सद्गति पथोलक । मुकुत  
= पुण्य । हलव = प्रकट करव । पुलके = आगमने । तनु = देह । अमुर  
अंस = दैत्यक अवतार । नृपवंश = राजाक वंशक । विध्वंसन = नाशक ।  
रङ्ग = युद्ध । अङ्गसहित = अपन देह सहित । अभिषेक = राजतिलक ।  
मुरारिभगति गति = कृष्णभक्तिक स्वरूप । गुण विन्दक = गुणग्राही ॥

श्रीकृष्णः - युधयो भक्तिमवलोक्य मयापि स्वीकृतमिदम् ।  
(श्विष्य चित्राङ्गवन्तामा देवदूतो गीतेनावेदयति ॥)

चित्राङ्गदः -

गीतसं० - ३२

हरि अभिषेक करिय नृप कैशिक, कइए परम सम्मान ।  
ताहि सिंहासन आनि बैसाओल, जाहि चढ़ल नहि आन ॥  
कह गुरपति दूत । ई सबे तोहि कहयि पुरहुत ॥ १ ॥  
से बुझि देवराजे सिंहासन, सकल रतनमय आज ।  
कनक-दण्ड सित छत्र पठाओल विवध विभूषण साज ॥  
राज इन्द्र अभिषेक महीतल, न थिक देव अधिकार ।  
ते कारने अनुमानि पुरन्दर कथ-कैशिक देल भार ॥  
अभ्यञ्ज,

भृग-कुमारि स्वयंवर उपगत, जत जत अलि महिपल ।  
सबहि हुकार करिय नृप कैशिक, हरि अभिषेक बिसाल ॥  
से सुनि जे भयति नहि आओल, तुअ नन्दिर नरपाल ।  
हरिक बध्म मय अवनवी-मण्डल, से ने रहत बिरफाल ॥

श्रीकृष्ण - अहाँ दुनू गोटाक भक्ति देखि हगहूँ एकरा स्वीकृत कयल ।  
(जबेन कथ चित्राङ्गद नामक देवताक दूत गीतक द्वारा कहैत छथि ।)

गीतसं० - ३२

चित्राङ्गद - हरि अभिषेक = श्रीकृष्णक राजतिलक । कइए = कयके । गुरपति-  
दूत = इन्द्रक दूत । पुरहुत = हुन्द । कनक दण्ड = सोनाक डंडा सँ  
मुक्त उजरा छासा । राज इन्द्र, अभिषेक = राजासबहिक मध्य  
उत्कृष्ट राजा होयबाक राजतिलक । महीतल = पृथ्वी पर ।  
पुरन्दर = हुन्द ।

आओरो -

भृगकुमारि = राजकुमारीक । उपगत = उपस्थित । हरिक बध्म  
= कृष्णक हाथे बध करवाक योग्य । अवनवी मण्डल = पृथ्वी पर ।



सुरपति - दूत उकुति नरपति सखी सुमति रमापति भाव ।  
सिंह नरेन्द्र सकल याचक गति, मिथि गति रस जान ॥

किञ्च सकल-तीर्थ-वारिपूरित दिव्यपद्म-मयमभिवेकनिमित्त  
कनक-कलशाष्टकं चाऽऽखण्डेन प्रेषितमिदम् ।

राजाजी—(गह्वर्य) शिरसि वृतावाब्राम्णां देवराजाऽनुज । कः कोऽन भोः ।

प्रतीहार—(प्रविश्य) एसोह्मि, आपवेदु महाराजो । [एषोऽस्मि, आज्ञापयतु  
महाराजः ।]

केशिक—इव पत्रमादाय श्रुति कुण्डिनपुरं प्रयाहि । वक्तव्यं च नृपेषु—  
“आवाभवं देवदेवस्य भगवतो वामुदवस्य राजेन्द्राभिवेको विधेयः ।  
तेन भावद्विरनाऽवश्यभागस्तद्वत् । यस्तु वाममिष्यति सोऽस्य  
वक्ष्यो भविष्यतीति देवराजेनाऽऽदिष्टमिति ।

प्रतीहार—जे आपवेदि देओ । [यदाज्ञापयति देवः ।]

(इति निष्क्रम्य रङ्गभूमिं गतः)

सुरपतिदूत = इन्द्रक दूतक । उकुति = कथन ।

आओर ई जे, सभ तीर्थक जल सँ गरल दिव्य सुगन्ध सँ युक्त  
अभिवेकक लेल लोगक आठ हा ई धँल इन्द्र, पठशोलनि अछि ।

दुनू राजा—(आनन्द सँ) हम दुनू गोटा देवराजक आज्ञा केँ माँथ पर चढ़ा  
ओल । क्यो अछि ?

प्रतीहार—(प्रवेश करि) इधैह हम छी, महाराज आज्ञा देब ।

केशिक—ई चीठी लय सीध कुण्डिनपुर जाह ओ राजासभकेँ कहबहुह जे—  
‘हमरादुनू गोटा देवदेव भगवान्, श्रीकृष्णक राजेन्द्राभिवेक  
(महान् राजतिलक) करब । ताहि कारण अहाँसभ एतय अवश्य  
अबैत जाह । जे नहि आवब से हिनक वक्ष्य (वचक योग्य) होबब—

ई इन्द्रक आदेश अछि ।

प्रतीहार—जे महाराजक आज्ञा हो । (ई कहि बहार भय रङ्गमञ्च पर  
गेल ।)

श्रीभक्त—(हमिष्यं प्रति) युवराज ! भवता जरासन्धादिभिः सह रङ्गभूमे-  
रक्ष्म्यत्वकारणाद् अत्रैव स्थितव्यम् । देवराजस्याऽप्यनुगतमेव  
सत् । गच्छन्तु चाऽन्ये भूपाला मया सह विदम्भनगरम् ।

हवमी—यदभिरोचते ताताय ।

(ततः सर्वे नृपभोष्मकं पुरस्कृत्य केशिक-भवनं गताः, श्रीभक्तः  
श्रीकृष्णं तत्रैव प्रणतिं कर्तुं मुह्यतः ।)

श्रीकृष्ण—महाराज ! नृप-लक्ष्मणा वयसापि च त्वमेव नः पूज्योऽसि । (इति  
विनिवार्य करे गृहीत्वा सिंहासनाभ्यस्तरे रामुपवेशयति ।)

(केशिकः प्रत्येकं शत्रु पाषादिभिरभिमन्त्रयति ।)

चित्राङ्गद—महाराज केशिक ! समागताः सर्वे नृपाः । देवराजो विमानमा-  
रुह्य देवैः सह गन्धर्वं यक्षाऽप्यारोभि र्मीयमानः कृष्णाऽभिवेक-  
दर्शनं लालसो दिवि स्थितस्त्वामादिशति । तत् त्वय्यंतां त्वय्यंताम् ।

भोष्मक—(हवमीकं प्रति) युवराज ! अहौ जरासन्ध प्रभूतिकं सङ्गं रङ्ग-  
भूमिके मूत्रं नहि रक्षवाक कारण एतद्गिरह्य । देवराजहुक से  
अनुपेदिते अछि । आन राजासभ हमरा सङ्ग विदम्भ नगर चलथु ।

हवमी—जे विचार गितालीक ।

(तखन सभ श्रीभक्त केँ आगु करि केशिकक भवन गेलाह ।

श्रीभक्त श्रीकृष्णकेँ देखि प्रणाम करवाक हेतु उद्यत भेलाह ।)

श्रीकृष्ण—महाराज ! राजाक संक्षण ओ अवस्थामे सँ अहाँ हमरा लोकनिक  
पूज्य छी । (रोकि हाथ छत्र दोसर सिंहासन पर बैसबैत छथि ।)

(केशिक प्रत्येक राजाकेँ पञ्च अक्षय आदि सँ सत्कार करैत छथि ।)

चित्राङ्गद—महाराज केशिक ! मया राजा आदि गेलाह । विमान पर चढ़ि  
देवतालोकनिक संग गन्धर्व, यक्ष ओ अप्सरासभ सँ स्तुति कयल  
जाएत देवराज इन्द्र कृष्णाभिवेकक दर्शनक लालसा सँ युक्त भय  
आकाशमे विद्यमान छथि ओ अहाँकेँ आदेश दैत छथि । तेँ  
शीघ्रता करि, शीघ्रता करि ।



(कव-केशिकी सानन्द कनक-कलशभङ्गतीर्थ-सलिलमादाय श्रीकु-  
ण्डलम्<sup>१</sup> शिरसि शशिर्द्वाभिषेकं चक्रतुः । तदा तत्पुरुषस्थितो गायन्ति  
विहागरागेण गीतम्:-)

[गीतसं०---३४]

हरष कहव कत आज सजनी ।  
अतिप्रमुदितमति कैशिक भूषति, हरिहि दिल निजराज ॥ध्रु०॥  
कनक-कलश सजो मुरसरि जल लय, विविध सुगन्धिक साथ ।  
अश्लोहित सहकारक पहलवे, सींचिय गदुपति - माथ ॥  
कुङ्कुम रोचन मलयज मृगमर्द, तिलक कश्य<sup>२</sup> हरि - भाले ।  
कंचन रजत विभूषन बहुविध, वसन देधि सुबिनाल ॥  
से देखि भीषमदेव महामति, गनि - मुकुता बहुमूल<sup>३</sup> ।  
हरषि देधि हरिपद अवनत भव, अनुपम रचिर दुकूल ॥  
जत जत भूप समानस कुण्डिन, सबहुं कवल वन-दाग ।  
अगनिज तत वरनय के जानक, मुसति रमापति भान ॥

(कव ओ कैशिक आनन्दपूर्णक सोनाक खेलसभ सौ जल लय श्रीकु-  
ण्डल माथ पर राजेन्द्राभिषेक (महाराज होयवाक अवसर पर जलक  
सिञ्चन) कथलनि । तदन ओहि नगरक स्त्रीगण विहाग रागक द्वारा  
गीत गवैत छथि ।)

गीतसं०—३४

अतिप्रमुदित—अतिप्रसन्न । हरिहि—कृष्ण के । कनककलश—सोनाक  
बेल सौ । मुरसरि—गङ्गाक । लोहित—लाल । सहकार, आम । मलयज  
—श्रीखण्डधान । मृगमर्द—कस्तूरी । कंचन—सोना । रजत—चांदी ।  
वसन—वस्त्र । अवनत—भुकि । रचिर दुकूल—सुन्दर वस्त्र ॥

अपि च-

[गीतसं०---३५]

हे सखि ! कहव कथोने दिसैवि ।  
जे होअ<sup>१</sup> आनन्द सुखक सदन, हरिक<sup>२</sup> वदन देखि ॥ध्रु०॥  
लथ करै तण्डुल दूवि मनोहर, बागन वेदे<sup>३</sup> खुमाव ।  
जुषे जुषे यनिता गुन गावय, कत<sup>४</sup> न लावय भाव ॥  
मुरज ताल धुनि, सुललित मने गुनि, गान करय<sup>५</sup> नट नाच ।  
भेष वरय कत, पाव सकल सत, जत अत जे जन जाच ॥  
उरवसि रम्भा सहित मेनका, गगन नाच अतिरेक ।  
किन्नर, शङ्कर सधिपति सन्निधि, गाव बजाव अनेक ॥  
कय अति हरषे<sup>६</sup> १४, कुसुमक वरपे, सुख देव - समाज ।  
वाए रमापति, हरिपद लय मति, वृक्षशि मेथिल - राज ॥

श्रीकृष्ण—(कैशिक प्रसि)

अनेन तव दामिन भक्त्या च कव-केशिकी ।

चतुर्वर्षे<sup>७</sup> - पलपाप्तिस्तथास्तु निवर्त भुवि ॥२१॥

आओरो—

गीतसं०—३५

दिसैवि—अधिक कय । सदन—घर (सुखक घर—अतिशय सुख) ।  
तण्डुल दूवि—दूबिलत । जुषे—आपुष बांन्हि । यनिता—नारी । मुरज—  
मिथला । जाच—महोत बांछि । अतिरेक—अतिशय । किन्नर—देवताक  
गायक । शंकर सधिपति सन्निधि—महादेव ओ इन्द्रक समीप मे ॥

श्रीकृष्ण—(कैशिकक प्रति) हे कव ओ कैशिक ! अहाँक एहि दात ओ भक्ति सौ  
अहाँके एहि पृथ्वी पर निवसकपे धर्मार्थकायमोक्ष ई चारु पुरुषार्थ  
प्राप्त होअओ ॥२१॥



कैशिकः—(प्रणम्य अञ्जलिं बद्ध्वा) देवदेव !

किमलभ्यं भगवति १५ प्रसन्नो आगसीश्वरे ।

ततो याचेऽचलाभक्तिं स्वयि देव मुहुर्मुहुः ॥२२॥

श्रीकृष्णः—(विहस्य तथास्तु) (भीष्मकं प्रति गीतेनादिशति विहागरागेण) —

[ गीत सं० - ३६ ]

भीष्मदेव सुनिज विनिवेदन, मन अनु करिअ भजान ।

एक सुता वर एके होयत यए<sup>१५</sup>, जगत सकल जन जान<sup>१७</sup> ॥१॥

हे नृप ! करिअ स्वयंवर काज ।

सुन सम्पति लिअ, ताहि सुता दिअ, जे समुचित महाराज ॥२॥

जे बिधि एहि निमन्त्रण उपगति, तुअ मन्दिर सब भूप ॥

ते बिधि हमहुं समागत कुण्डित, यहुबल लय अनुलप ॥३॥

१५ हमर समागत दोष बुझिअ जनु, दिअ निज कन्या दान ।

हम बाधक नहि होएव स्वयंवर, नृपवर कस अनुमान ॥३॥

जे जन कन्या - विवाह विधन कर, निवसय नरकक कूर ।

सुपति उमापति उकुति शास्त्र कह, जानधि मिथिला - भूष ॥४॥

कैशिक—(प्रणाम कय आँजुर बाम्हि) देवदेव ! संसारक ईश्वर भगवान् अप-  
नेक प्रसन्न भेला पर कोन वस्तु अलभ्य (नहि प्राप्त होमयबला) अछि,  
तखन हे देव ! अहाँक प्रति अचल भक्ति हो से बारम्बार मअँत  
छी ॥२२॥

श्रीकृष्ण—(हँसि) तहिना हो (भीष्मकक प्रति विहागरागवला गीत सौ आदेश  
दँत छथि) —

गीतसं० - ३६

मलान - उदास । उपगत - उपस्थित । मन्दिर - घर मे । यहु-

बल - वादवीर्य सेना । सुपति उमापति उकुति - पारिजातहरण

नाटककार सुपति उमापति स्वोद्ध्ययक उक्ति अछि, जे शास्त्र  
कहेत अछि ।

भीष्मकः—(उत्पथ्य सागुनलम्) देवदेव ! दुर्विनीतो बालश्च मत्कुमारो ह्यमौ  
समवस्तमसि प्राकृतमिव जानाति । ततो नृपसिंहासनोपवेशनादौ  
नाऽऽदरमाचरति । तेन मयापि सभागृहं पथमं तोषनीतो देवदेवः ।  
किन्तु आप्मया मदनुपस्यैव सर्वमाचरितम् । अतः परं सभागृहमेव  
१३ देव्यामि ।

श्रीकृष्णः—महाराज ! किमर्थं मया तत्र गन्तव्यम् ? भवद् विलोकनादेव पूरिता  
नो गन्तोरथाः । किन्तु यतो वयं पात्रतां प्राप्ताः, ततः पात्रेभ्यः  
कन्यापि दीयतां, वाच्यं शेषमाकर्ष्य । (पुनर्गीतेन :—)  
मेरुशिखर भय, कमलासन लय, सुरगत कएल विचार ।  
भीष्म नृप तनया भय कमला अवनि लेधु अवतार ॥१॥  
ता सबी हरि परितय महि होयत, बहुत होयत सुरकाज ।  
ई बुझि हमर निकट उपगत अब भाणि गेल मुनिराज ॥२॥  
से सुनि भीष्मदेव महापति, दूध भय वयल बेआन ।  
शिवबला माधव जनु पेबल, लेबल<sup>१५</sup> सने नहि आन ॥३॥

भीष्मक—(ऊठि बिलयपूर्वक) देवदेव ! अशिष्ट ओ बालक हमर पुत्र ह्यमौ  
भगवान् को केँ साधारणलोक बुझैत अछि। तेँ राजसिंहासन पर बैसब  
आदि मे आदर नहि करैछ । ताहि कारणेँ हमहुँ सभागृह मे  
देवदेव केँ नहि लय गेलहुँ । किन्तु ई दुनू कथ ओ कैशिक हमरे  
आजा सँ सभ किछु कयलनि अछि । एकर बाद सभागृहे लय  
जाबब ।

श्रीकृष्ण—महाराज ! कियेक हम ओतय जाबब ? अहाँक यशोने सँ हमर मनो-  
रथ पुरि गेल । किन्तु जेँ हम सपात्र छी तेँ सत्पात्र (समुचित योग्य  
व्यक्ति) केँ जेप बलवत् सुनि कन्या देल आय । (फेर गीत सँ) —

मेरुशिखर = शृंगैरु पर्वतक छोटी पर एकजित भय । कमला-  
सन = शला। सुरगत = देवता । तनया = पुत्री । कयल = लक्ष्मी ।  
वनि = पृथ्वी पर । परितय = विवाह । महि = पृथ्वी पर । मुनि-



भीष्म नृपति उकुति यकुपति सजो, संमति रमापति भान् ।

सिंह नरेन्द्र सकल अरुनीपति कुस सब गुनक निधान ॥२॥

भीष्मकः—(प्रणम्य) भगवन् ! एवमेतत् । सम्प्रति मया स्वयं वरौपि विनि-  
वारितः ॥

श्रीकृष्णः—(गहड़ प्रति अनामिकम्) खगेन्द्र ! स्वयं वर-विधत्नात् प्रकुपिता  
जरासंधादयो माधुरैरवधं कालयवतं पुनस्कृत्य मधुरोपरोधं करि-  
ष्यन्ति । तेन मद्बचनात् समुद्र-सकाशात् स्थलमुपगृह्य भवता  
पक्षवातेन जलं प्रक्षिप्य विश्वकर्माणसाहूय, तत्र सकल-आदवगण-  
सन्निवेशयोग्या द्वारवती नाम्नी नगरी द्रुतं विधेया । अन्यच्च  
स्विमण्या हस्पावसरे भवता साहाय्यमाचरणीयम् ।

गहड़—देवदेव ! सर्वमेतन्मया सम्पादनीयम् । (इति निष्क्रान्तः) ।

भीष्मकः—(स्वयं वरार्थमागतान् नृपान् प्रति ३३ सप्रश्रयम्)—

नमस्कृत्य भूमिपाला नव-विनययुताः स्वैरुकीः समेताः

राज = नारद । दृढ़ = स्थिर । विश्वरूप = रासारक स्वरूप । तनु =  
देह । भीष्मनृपति उकुति = भीष्मक-राजा उक्ति । अरुनीपति =  
पृथ्वीपति, राजा ॥

भीष्मक—(प्रणाम कय) भगवन् ! ई एहिना अछि । एखन हम स्वयं वरौके  
रोवैत छी ।

श्रीकृष्ण—(गहड़क प्रति कनकसुकी कय) पक्षिराज ! स्वयं वरक नंग सौ तम-  
सायल जरासन्ध आदि, मधुराक भीर सौ अवध कालयवन के आगू  
कय मधुरा मे उपद्रव करत । ते हग्राधचन सौ समुद्रक समीप सौ  
अहाँ स्थल (भू-भाग) लय पंखिक हवा सौ जल फेकि, विश्वकर्मा  
के बजाय ओतय सभायादिक निवास योग्य द्वारवती नामक  
नगरी अटव बनबाउ । दोसरो बात जे स्विमणीक शरणक समयमे  
अहाँ सहायता करी ।

गहड़—देवदेव ! ई सबकिछु हम करब । (बहार भय गेलाह) ।

भीष्मक—(स्वयं वरक हेतु आयल राजासभक प्रति विनयपूर्वक)—

हे नीति ओ विनययुक्त राजालोकनि ! अहाँसभ अपन सेनासहित

नेदनीं गत्सुतायाः ३३ खरिवरणमनो राजधानीं स्वकीयाम् ।

क्षान्त्यवस्थापराधो मम मतवयसः शीलवद्भिः भविद्भिः

अधिष्ठं नम्रमौलिः कुतनयवक्षसो नो विधेयः प्रकोपः ॥२३॥

(रजानः श्रीकृष्णं प्रणम्य तथाऽऽचरन्ति)

भीष्मकः—देवदेव ! सम्प्रत्यनुनातीहि मां स्वपुरगमनाय । किन्तु मधुरामुप-  
गते वार्तोपलब्धिः कथं स्यात् ?

श्रीकृष्णः—देवविभाग्यं सर्वं कथयिष्यति । महाराज कैशिक ! वयमपि  
सम्प्रति मधुरामेव यास्यामः ।

(उभौ श्रीकृष्णानुनीय प्रणम्य च प्रतिनिवृत्तौ)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति रविमणीपरिणये श्रीकृष्णस्य राजेन्द्राभिषेक-  
स्वयं वरविघटनको नाम चतुर्थोऽङ्कः ॥

जाइ जाउ । एखन हमर पुत्रीक विवाह नहि होयत, अतः अपन राज-  
धानी जाउ ओ बृहद्भगर एहि अपराधके सदाचारी अहाँ लोकनि क्षमा  
करी । हम सौंय कुकाय पाचना परैत छी जे हमर कुपुत्रक द्वारा  
कदल अपराध पर कोध जनु करी ॥२३॥

(राजासभ श्रीकृष्णके प्रणाम कय ओहिना करैत छयि ।)

भीष्मक—देवदेव ! एखन हमरा अपन नगर अयक्षाक आज्ञा दिय । किन्तु अ-  
नेक मधुरा पहुँचला पर समाचार कोना प्राप्त होयत ?

श्रीकृष्ण—देवि नारद आवि सभाटा कह्ताह । महाराज कैशिक ! हमरो  
लोकनि एखन मधुरे जायत ।

(द्विज राजा श्रीकृष्णक प्रार्थना ओ प्रणाम कय बुरि गेलाह ।)

(सभ बहार भय गेल ।)

॥ रविमणीपरिणये श्रीकृष्णक राजेन्द्राभिषेक ओ  
स्वयं वरविघटन नामक चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥



## अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्याकाश-यानेन नारदः । तत्र गीतम्—)

[गीत सं०—२७]

सुरमुनिराज मनोहर भेष । ब्रह्म-तन्त्र नारद परवेस ॥  
शुभ्र तिलक उपवीत दुक्कल । श्रुति-पुस्तक जरमाल अमूल ॥  
वण्ड कमण्डल सण्डित हाथ । कपिल जटात्रय सोभित माथ ॥  
ब्रह्म-सैजे तमु मलिन दिनेस । योग जुगुति जनि दोसर महेश ॥  
हरिक पठाओल भीषण-ठाम । उपगत मुनिवर कृष्णिन प्राग ॥  
कहधि रमापति नारद-रूप । रस-बुधु रसमय मैथिल भूप ॥

राजा—(प्रविश्य, नारदागमनं प्रकाशाधिक्याद् विलम्बं द्वाराद् बहिर्गतां प्रणम्य, पुरस्कृत्याऽऽनीय, अत्वादरेण अतिथि-सत्कारं विधातुं भगवन् ! त्वयश्च कुतार्था धन्याश्च युष्माकमागतं प्रसादात् ।

पाँचम अङ्क

(तत्पश्चात् आकाशमार्गं सौ नारदः प्रवेशः करोति छधि । ताहि मे गीत—)

गीत सं०—२८

सुरमुनिराज = देवताक मुनि मे राजा, नारद । ब्रह्मतन्त्र = ब्रह्माक पुत्र । शुभ्र = स्वच्छ । उपवीत = जनेस । दुक्कल = वस्त्र । श्रुति पुस्तक = वेदक पोथी । अमूल = अमूल्य । कपिल = भाल । दिनेस = सूर्य । योग जुगुति = योगाभ्यास सौ । महेश = महादेव भीषण-ठाम = भीष्मक ओहिठाम । उपगत = आयल ॥

राजा—(प्रवेश कय, अधिक प्रकाश भेलासौ नारदक आगमनक तक कम द्वार सौ बाहर जाय प्रणाम कय, आगु कयके आनि अग्र्यन्त आदर सौ अतिथि-सत्कार कय) भगवन् ! हमरा लोकनि आइ अपनेक आगमनक प्रसाद सौ सकल ओ कय छी ।

नारद—(शुभाशुभो वत्सा) राजन् । न खलु विस्तर-शिष्टाचारस्यैव समयः ।

राजा—(उपविश्य सविनयम्) कथयन्तु तयोनिधिरागमन-प्रयोजनम् ।

नारदः—सम्प्रति द्वारकासौ भगवता वासुदेवेनाऽहमत्र प्रेषितः ।

राजा—कुत्र सा द्वारका नगरी ?

नारदः—पश्चिम-समुद्र-स्रोतकण्ठे मण्डद्वारा समाजन्तो विश्वकर्मा कालञ्चन-

मयी तां पुरीं चकार ।

राजा—किं तत्र भगवान् सम्प्राप्तः ?

नारदः—राजन् । विदर्भनगरे श्रीकृष्णस्य राजेन्द्राभिषेकशृङ्गारं सर्वमेव निशम्य जरासन्धप्रभृतयः शङ्किताः समयाश्च बभूवुः । ततो हविमणा सह सम्मन्थ्य माधुरैरवध्यं कालययन् पुरस्कृत्य मधुरोपरोधं कृतवन्तः ।

राजा—ततस्ततः ?

नारद—(शुभाशुभो वत्सा) राजन् एष्वन विशेष शिष्टाचारक ई समय नहि थिक ।

राजा—(बसि विनयपूर्वक) कहल जाओ तपस्यारूप धनवाला अपने अवकाश प्रयोजन ।

नारद—एखन द्वारका सौ भगवान् कृष्णक द्वारा हम एतय पठाओ छी ।

राजा—कतय अछि ओ द्वारका नगरी ?

नारद—पश्चिम-समुद्रक सट पर मण्डक द्वारा आशा आबि विश्वकर्मा स्वर्णमयी ओहि नगरीक निर्माण कयल ।

राजा—की श्रोतय भगवान् पहुँचि गेलाह ?

नारद—राजन् । विदर्भनगरे श्रीकृष्णक राजेन्द्राभिषेक होयबाक समाचार सभ मुनि जरासन्ध इत्यादि शङ्कित ओ भयभीत भय गेल अछि । तौ हवमी : संग परानर्श कय मधुरावासी सौ अवध्य (नहि मारल जय-वाक योग्य) कालययन के आगु कय मधुरा पर आक्रमण कयलक ।

राजा—तत्पश्चात् ?



नारदः—श्रीकृष्णोऽपि प्रागेव पादवान् द्वारवतीं प्रेष्य स्वयं कालयवनं दर्शयित्वा प्रपलाय्य एकाकिनमनुवाक्यं कालयवनं मुचकुन्त-नृपस्य नेत्राग्निना भस्मासाद् विधाय द्वारवतीं गतः । तत्र च मामनुत्सृज्य श्रीकृष्णो नोक्तं यथाशीघ्रं त्वया कुण्डितं गत्वा भीष्मकाय वाच्यं, त्विमया सह विवाहं करोतु शिशुपालार्थमेव विवाहोद्योगम् । तत एवाऽभिमतसिद्धिं भविष्यतीति ।

राजा—सर्वार्थं कुमारमाहूय तथा क्रियते ।

नारदः—अहमपि स्विमया भूतं कन्याभवनान् प्रच्छन्न एवोपलभ्य यास्यामि ।  
(इति निष्क्रान्तः ।)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

नारदः—श्रीकृष्णो गहिनहि वायव्यसमके द्वारका पठाय स्वयं कालयवनक शोभां होइत पड़ाय एकसरे श्रीदेव कालयवन के मुचकुन्द-राजाक आँखिक आगि सँ भस्म कराय द्वारका गेलाह । आ ओतम हमरा बजाय श्रीकृष्ण कहलनि जे यथाशीघ्र अहाँ कुण्डितपुर जाय राजा भीष्मक के कहियनु जे स्वमीक संग विचारि करधु शिशुपालक हेतु विवाहक उद्योग । ताही सँ अभीष्ट सिद्धि होयत ।

राजा—सबतहिँ कुमारकेँ बजाय तहिना करैत छी ।

नारदः—हमहूँ स्विमनीक हालचाल कन्याभवन सँ नुकायकेँ प्राप्तकय जायव ।  
(प्रस्थान कय देलहि ।)

विष्कम्भक समाप्त ।

[वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथाशानां निदर्शकः ।

विष्कम्भोऽङ्गुद्वयस्थान्ते पातोऽङ्गुस्थाऽविभागतः ॥

बीतल वा आगामी कथाशिके सूचित करयबला दृश्य केँ विष्कम्भक कहल जाइत जे दुध अङ्गक बीच मे अङ्गुश मिल्ल अपृथक् रहैछ । अर्थात् ई नाटकक आदि वा अन्त मे रहि भय सकैछ । ई कथावस्तुकेँ परिपूर्ण ओ सम्बद्ध करैछ । (दशरूपक) ।]

राजा—नयसागर ! आहूयतां कुमारः ।

(कञ्चुकी तथा करोति । ततः प्रविशति स्वमी)

स्वमी—महाराज ! कथमाहूतोऽस्मि ?

राजा—कुमार ! अतः मया, श्रीकृष्णः प्रपलाय्य द्वारवतीं गतः । तेन चेदितृपमा-नीय क्रियतां भविष्या विवाहोद्योगः ।

स्वमी—(सहर्षमुत्थाय) मयाऽपि कलहवर्धनस्तत्र प्रेषितः ।

राजा—सम्बद्धं कृतम् । नयसागर ! देव्यं यत्तव्यं करोतु देवो सम्भारानिति ।  
(कञ्चुकी तथा करोति । देवी च सोढे गं तथा कुतवती ।)

(ततः प्रविशत्युपविष्टा गङ्गीद्वय-सहिता स्विमनी)

स्विमनी—सहे मुअक्षिणो ! कथं मयुरा-नगरं गयो साहबो ?

[सखि मुदक्षिणे ! कथं मयुरा-नगरं गतो माधवः ?]

मुदक्षिणा—अधः ? तयो वि दुआरवदिश गयो । [अथ किम् ? तस्योऽपि द्वार-वती गतः ।]

राजा—नयसागर ! कुमारकेँ बजाय ।

(कञ्चुकी तहिना करैत अछि । तखन स्वमी प्रवेश करैत छथि ।)

स्वमी—महाराज ! कियेक बजायल अछि ?

राजा—कुमार ! हम सुनल अछि, श्रीकृष्ण पड़ाय द्वारका गेलाह । तेँ चेदि-राज शिशुपालकेँ आनि कलहवर्धनक विवाहक उद्योग ।

स्वमी—(सहर्षं उलि) हमहूँ कलहवर्धन केँ ओतय पठाबने छी ।

राजा—नीक कयलहुँ । नयसागर ! महाराजीकेँ कहियनु जे ओ ओरिधान करथि ।

(कञ्चुकी तहिना करैछ । देवी उद्योग महिन तहिना कयलनि ।)

(तखन दुइ सखी सहित बैसलि स्विमनी प्रवेश करैत छथि ।)

स्विमनी—सखि मुदक्षिणे ! की मयुरा-नगर गेलाह माधव ?

मुदक्षिणा—त आओर की ? ओतहुँ सँ द्वारका गेलाह ।

?—बूरबदि—कः द्वारवति—छ ।



रुक्मिणी - सहि ! कथेहि पुणो वि आअमिरसदि ? [सखि कथय पुनरपि आग-  
मिष्यति ?]

सुदक्षिणा - सहि ! जइ दे देवस अणुऊलदा भविरसदि, तुम उण कुदो बुवाव-  
त्थादो पडिहीअसि ? [सखि ! यदि ते देवस्य अणुऊलता भविष्यति,  
त्वं पुनः कुतो युवावस्थातः पतिहीयसे ?]

[रुक्मिणी गलज्जमघोमुखी तिष्ठति ।]

सुशोभना - (मुखमुन्नमय) सहि ! अह्मारिसोमु<sup>२</sup> का एव लज्जा ? ता  
कहेउ<sup>३</sup> पिअसही । [सखि ! अस्माद्वशीषु काऽथ लज्जा ? तत् कथ-  
यतु प्रियसखी ।]

रुक्मिणी—(गीतेनाऽऽवेदयति)—

[गीतसं०—३८]

माधव - गमन दिवस सज्जो, सज्जो

मोहि होअ जहिण विषाद ।

जतनहु कहुय न<sup>४</sup> पाखिअ<sup>५</sup>, सज्जो

छने छने<sup>६</sup> तनु अवसाद ॥

रुक्मिणी - सखि ! कहु फेर अओसाह ?

सुदक्षिणा - सखि ! जं अहाँ पर देवथीकृष्णक अणुऊलता होयत तें अहाँ की  
कोनो युवावस्था सँ हीन भय रहल छी ?

[रुक्मिणी लज्जालि नीचां मुहें रहैत छथि ।]

सुशोभना - (हुनक मुँह उठाव) सखि ! हमरा लोकनिक सन लोकक लग कोन  
लाज ? तें कहु प्रियसखी ।

रुक्मिणी - (गीतक द्वारा जनवैत छथि) -

[गीतसं० - ३८]

माधव-गमन-दिवस = श्रीकृष्ण जहिया सँ गेलाह अछि ताहि दिन  
सँ । जहिण = जेहन । विषाद = दुःख । तनु अवसाद = देह समाप्त

२-०-क (ई पाँती नहि अछि) । ३-मुन्नम - छ । ४-अस्मिन्नुका -

छ । ५-कहेहु - छ । ६-ने - 'क' । ७-पाखिअ - छ । ८-छन  
छन - क ।

अमिअ किरन कसि सुनिअ, सज्जो

सेहओ वरिस विषवार ।

दछित<sup>१</sup> पवन तह तनु वह, सज्जो

मलयज परस अङ्गार ॥

अगर - निकर - रवे मण्डित, सज्जो

मुकुलित देखि सहकार ।

पुसछि खगिअ महिमण्डल, सज्जो

बिनु कारने कति द्वार ॥

कोकिल कल धुनि सुनि सुनि, सज्जो

मन हअ अधिक उदास ।

केवल जीवन राखिअ सज्जो

पुन तनु दरसन आस ॥

तुअ - पुण - सिधु - मयन हरि, सज्जो

एहन कारिअ अवसान ।

अचिरे आओत यदुनायक, सज्जो

सुमति रमापति मान ॥

सुशोभना - सहि सुदक्षिणे ! अचरित<sup>२</sup> पिअसहीए अकारण परोक्षानुराग  
जदो एव<sup>३</sup> मन्तरेदि<sup>४</sup> । [सखि सुदक्षिणे ! आश्चर्य प्रियसखा  
आकारण - परोक्षानुरागो, वत एव<sup>५</sup> मन्तयति ।]

नेल जाइख । अमिअ = अमृत युक्त किरणयला चन्द्रमा । तह = सँ ।

वह = जरत अछि । मलयज = श्रीकृष्ण चन्दनक स्पर्श । अगर =

भीराक समूहक गुरुजन सँ अभित । मुकुलित = मञ्जरीयुक्त ।

सहकार = आभक गाल । महिमण्डल = पृथ्वी पर । कल = कुहुकल ।

तनु = माधवक । तुअ = हरि = अहाँक समुद्र सन विशाल गुण

पर श्रीकृष्ण मुख छथि । एह = ई । अवसान = ज्ञान । अचिरे =

शीघ्र । यदुनायक = श्रीकृष्ण ॥

सुशोभना - सखि सुदक्षिणे ! आश्चर्य<sup>६</sup> शिक प्रियसखीक बिनु वारणक परोक्ष-  
अनुराग, किये तें एहि प्रकारे बिचारेत छथि ।

१-रपित - छ । २-अचरित - क.ख । ३-वेदि - छ ।



सुदक्षिणा - सहिण १२ अक्षरिज १२ एव - ज्वरी -

[सखि ! न अतु आश्रयमिति, कतः] (गीतेन) -

[गीतसं०-३६]

सुनिध विदुषि सखि । तेजि सन्नेहे ।

पुष्प सङ्कते गुने जपज सिनेहे ॥

कारन - रहित परम अभिरामे ।

सज्जत सिनेहे देविष्य कत ठामे ॥

१४ससि - सति दरव कलानिधि देखी ।

हरण चकोर - नयन तन्निह पेखी ॥

कमल कुमुद दुहु सलिल निवासे ।

रवि शशि दूर, करवि परमासे ॥

चातक तेजधि सरोवर - नीरे ।

घन-जल बिन्दु सीवि रह श्रीरे ॥

सुमति रमाति घन वरमाने ।

मानस-प्रेम हेतु के जाने ॥

सुदक्षिणा - सखि ! ई आश्चर्यक विषय नहि धिक, कियेक तैं - (गीतक द्वारा) -

[गीत सं० - ३६]

विदुषि = बुद्धिभारि, तेजि = छोड़ि । पुष्प सङ्कते = पहिलुका पुष्प

सैं । अभिरामे = सुन्दर । ससि सति दरव = चन्द्रकान्त सति पवि-

लेछ । कलानिधि = चन्द्रमाके । हरण = प्रसन्न होइछ । चकोर -

नयन = चकोर पक्षीक आँखि । तन्निह = चन्द्रमाके । पेखी = देखि ।

कमल - परमासे = पानि मे रहनिहार कमल ओ कुमुद फूलके

दूरहु रहला पर कभवाः सूर्य ओ चन्द्र प्रकाशित कय प्रेमा छथि ।

चातक = चकवा पक्षी । तेजधि = त्याग करैत अछि । सरोवरनीरे

= पोखरिमे पानि । घन-जल बिन्दु = मेघक पानिक बिन्दु । मानस

प्रेम हेतु = मानसिक प्रेमक कारण ॥

१२ - सं० - ख । १३ - अक्षरिज - क ख । १४ - सखि - ख ।

देवी - (प्रविश्य) अइ सुदक्षिणे ! अज्ज मए अधिअदरं रसिमणीए उब्बेज-  
कारणं सुदं । तथो तुम्हाणं पिअसहि दट्टु १५ समागदा । [अधि सुद-  
क्षिणे ! अथ तथा अधिकतरं रसिमण्या उद्दिग-कारणं श्रुतम् । ततो  
युष्माकं विषयसखीं द्रष्टुं समागता ।]

सखी - देह ! कि दाव अधिअं । [देवि ! कि तदधिकम् ।]

देवी - (सदस्ती १५ गीतेनावेदयति) -

[गीत सं० - ४०]

हरिक नमन मुनि, कुविषय मने मुनि, जे मोहि शेल अनुतापे ।

नृप - दमघोष - तनय वर आश्रित, से मुनि दोगुन सन्तापे ॥

ओ धै साजनि ! तोरित करिअ से १७ काजे ।

विभुवन - सुन्दर अवनि - पुरन्दर, पुन आबधि यदुराजे ॥ १८ ॥

अहिनि मुनिअ गोरि, तहिनि दुलहि मोरि, जलधि-सुता अवतारे ।

महत तनिक १९ कर, असर - अंस वर, करव कओन १६ परकारे ॥

धेरज धरिअ मनोरथ पूरत, राति करिअ अनुमाने ।

केसरि - भागर २० पाव नहि जम्बुक, सुमति रमाति आनि ॥

देवी - (प्रवेश कय) हए सुदक्षिणे ! आइ हम रसिमणीक अधिक उद्दिग्न होयव  
सुनलहुँ अछि । तैं तोहरालोकनिक सखीके देखव आइलि छी ।

हुँ सखी - महारानी ! अधिक की कहू ।

देवी - (गते गीतक द्वारा आशय प्रकट करैत छथि -)

[गीतसं० - ४०]

कुविषय = अधलाह दिन । अनुतापे = दुःख । नृप दमघोष तनय = राजा

दमघोषक पुत्र शिशुपाल । अवनि-पुरन्दर = पृथ्वी पर इन्द्र स्वरूप । यदु-

राजे = श्रीकृष्ण । गोरि = गौरी । जलधि सुता = समुद्रपुत्री लक्ष्मीक

अवतार । असुर = राक्षस । केसरि भाग = सिंहक भाग्य के । जम्बुक

= गोरिछ ।

१५ - वट्ट - ख । १६ - रोवनागा - क ख । १७ - ० ख । १८ - तन्निह - ख ।

१९ - कोन - ख । २० - भाग सम पाव - ख ।



(रविमणी आकर्ष्य मुच्छिता भूमौ पशत ।)

देवी—अह सुदक्षिणे ! एतत् दाणिं को उवाओ ? सुशोभने ! तुभं सीअलोव-  
आरेहिं पिअसहिं उवाअर । [अयि सुदक्षिणे ! अश्वेदानीं क उपाय ?  
सुशोभने ! त्वं शीतलोपचारैः प्रियसखीम् उवाअर ।]

(सखी तथा कुरुतः । रविमणी तथापि संज्ञां न लभते ।)

देवी—ए मए मन्दभाइणीए एत्थ अश्वत्थादत्थ । [न मया मन्दभागिन्या  
अन अवस्थातव्यम् ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

सखी—(गीतेनऽऽकम्पयतः)—

[गीतसं०—४१]

चेतिअ नृपति - कुमारी । सखि आहे ।।अ०॥

२१वचन सुनिअ अवधारी ।।

सतत कहिअ सवे जाने । सखि मोरि आन-समाने ।।

बिनु दोषे तेजिअ ताही । एहन कुबुधि होअ काही ।।

मोरि जिव कुलिश - उपाये । एहुजन न तेजव टामे ।।

(रविमणी मुनि मूर्च्छित भय पृथ्वी पर खसलोहि ।)

देवी—हए सुदक्षिणे ! एतत् आव कोन उपाय अछि ? सुशोभने ! तो ठंका उप-  
चार सग सँ प्रियसखीक सेवा करहु ।

(दुहु सखी तहिना करैत छवि । रविमणी तैयो होअ मे नहि अवैत  
छवि ।)

देवी—अभागलि हम आव एतय तहि रहि सकैत छी । (बहार भय गेलीहि ।)

दुहु सखी—(गीतक द्वारा कनैत छवि)—

[गीतसं०—४१]

चेतिअ - जान करु । नृपति-कुमारी - राजकुमारी । अवधारी -

विचारि । सतत - हरदम । तेजिअ - छोड़ैत छी । जिव - जीवत ।

विहि = विरचित्र परकारे । विभुवन होयत असारे ।।

सुमति रमावति गावे । धैरजे सवे फल पावे ।।

रविमणी—(चिरेणाऽवलोक्य) हला सुदक्षिणे ! कथं मन्दभाइणि जीविअ<sup>२२</sup>

वट्टुं सम्भाव्येसि सं ? हला सुशोभने ! किं दाणिं सीअलोवआरेहिं ?

जवो, [अयि सुदक्षिणे ! कथं मन्दभागिनी जीवितां सम्भावयसि

माम् ? अयि सुशोभने ! किमिदानीं शीतलोपचारैः यतः ।] (संस्कृ-

तमाश्रित्य श्लोकेन)—

जलाद्र<sup>२३</sup> किं नलिनी - श्लेन किं

श्रीखण्ड - कर्पूर - रजश्चयेन किम् ?

आकर्णित-केन विलोकितं वा

हृद्-रोग - शास्तिः कदमारजेन ।।२४॥

सखी—(आनन्दम्) सहि ! एकां करेम्ह । [सखि ! एवं कुर्वी ।] (इति

रविमणी-दल चन्दनाधिकमपसारयति ।) पिअसहि ! कथोहि सरीराव-

त्थं । [प्रियसखि ! कथय शरीरावस्थाम् ।]

कुलिश उपाये - वज्रक समान । विहि-विरचित्र - विघाताक बना-  
ओल । असारे - निस्तत्त्व ।।

रविमणी—(बड़ी काल पर देखि) हए सुदक्षिण कियेक एहि अभागलि के  
जीवित देखबाक सम्भावना करैत छह ? हए सुशोभने ! एहन  
एहि शीतल उपचार सँ की होयतह ? कियेक तँ :—

जल सँ भीजल पंखे सँ की, पुरइतिक पात सँ की, ओ श्री-  
खण्ड तथा कर्पूरक सत्त्वक डेर सँ की भय सकैछ ? ई क्यो सुनलक  
वा देखलक अछि जे हृदय रोगक शास्ति हाथ सँ पोछला सँ  
होइछ ? ।।२४॥

दुहु सखी—(आनन्दपूर्णक) सखि ! सय टा करव । (पुरइतिक पात, चानन  
आदि हुटवैत छवि ।) प्रियसखि ! कहू शरीरक अवस्था ।



रुक्मिणी—विसामेहि विअसहि । [ निजामल जियलखि । ] ( पुन गीतिन वदति )—

[ गीत सं—४२ ]

सुनिअ सुचेतन सगवति, करिअ उपम विचारि ।

कुकरम परम हमर जनि, ते तेज गेल सुरारि ॥

वा रे<sup>२४</sup> माधु<sup>२५</sup>

नलनि सयन, मलयज रज, परसे<sup>२६</sup> उपगत साय ।

सुरभि-रजनि पूरन-शशि देखि<sup>२७</sup> अधिक हिय काय ॥

सखन बिकल सति विकरय, कि करय हमे परकार ।

निरदय भय हिरदय हन, पनसर रा<sup>२८</sup> दुरवार ॥

न मिलत यदि एहि<sup>२९</sup> अवसर, माधव माधव-मास ।

तजो हम जीव धरव साज, एहन करिअ जगु आस ॥

अचिरे<sup>३०</sup> पुरत तुअ अभिमत, होएत कुदिन अवसान ।

गुन बुझि मधुरिपु आओत, त्रुति रमाति भाव ॥

( इत्यभिधाय पिकरुतमाकर्ण्य पुन सुंछति । )

रुक्मिणी—सुनहु प्रियसखी । ( फेर गीतक द्वारा कहैत छति )—

[ गीत सं—४३ ]

सुचेतन = ध्यान सँ । नलनि सयन = पुरस्कृत पातक ओछान । मलयज

रज = धोखण्डक गर्दी । परसे = स्पर्श सँ । सुरभि रजनि = वसन्त ऋतुक

शक्ति । पूरन शशि = पूर्णिमाक चन्द्रमा । हिय = हृदय । सखन = कान ।

विकरय = कोइलीक शब्द । हन = मारैत आछ । पनसर = कामधेन । सर

= बाज । दुरवार = रोकल जएवा-योग्य नहि । माधव = कुण । माधव

गोशाख । अचिरे = शीघ्र । अभिमत = अभिलाषा । अवसान = अन्त ।

मधुरिपु = क्षण ॥

( ई कहि कोइलिका कुहकय सुनि फेर सुंछित होइत छति । )

२४ - ० - क । २५ - उपगत सन अनुसाय - क । २६ - देखिअ - ख । २७ -

० - ख । २८ - सुअवसर - क ख ।

सुशोभना—सहि सवनिखणे ! अरिय<sup>३१</sup> दाणि कोवि उवाओ ? [ सखि सुद-  
क्षिण ! अस्तीदानी कोइयुपाय ? ]

सुदक्षिणा—सुद सए महाराज-समीप देवइसी नारदो उवगयोनि । तयो<sup>३२</sup>  
तत्स<sup>३३</sup> तपोवलेण कोवि पदीआरो एरथ भविस्तदि तयो अपणे-  
हसेमि गुणी तरं तुअ दाव भट्टिआरिअ उवअर । [ अय मया महा-  
राज-समीप देखि नहि द उपगतोइरित । ततः तत्स तपोवलेन  
कोइमि प्रतीकारोइन भविष्यति । ततोऽग्निय्यामि मुनीश्वरं, त्वां  
तावद् भर्तृदारिकामुपचर । ]

सुशोभना—नह । [ नदम् । ]

सुदक्षिणा - ( तिष्कम्य द्वाराद् बहिः आकाशे ) अए मुणीशर नारद । [ अये  
मुनीश्वर नारद । ] ( इति अत्युच्ये जंगाद । )

नारद - ( प्रविश्य सखीक्षम् ) कुवाइरित नारद ? काइरि त्वं, कथं वा त्वम्  
एवम् आह्वयसि ?

सुदक्षिणा अवज ! भट्टिदारिए रुक्मिणीए सही सुदनिखणा मिह<sup>३४</sup> । षणमामि  
अज्ज । [ आर्य ! भर्तृदारिकाया रुक्मिण्याः सखी सुदक्षिणाइरिग ।  
प्रणमामि आर्यन् । ]

सुशोभना—सखि सुदक्षिण ! एहन कोनो उपाय अछि ?

सुदक्षिणा—हम सुनलहुँ अछि जे महाराजक लग देववि नारद भवलाहु अछि ।  
ते हुनक तपोबल सँ कोनो प्रतिकार एतय होवत । मुनीश्वर  
नारदके तकैत छी । तो तावत् कुमारीके उपचार करह ।

सुशोभना—वड दीध ।

सुदक्षिणा—( बहार भय द्वाराही बाहर आकाश दिस ) अओ मुनीश्वर नारद !  
( ओरनी चिकरलीहि । )

नारद - ( पक्षे कय कोवपूर्वक ) कहाँ छथि नारद ? के भिकह तो, किबैक  
एना सोर करैत छहु ?

सुदक्षिणा - आर्य ! राजकुमारी रुक्मिणीक सखी सुदक्षिणा छी हम । आदंके  
प्रणाम करैत छी ।

३६ - आये - क, अरथ - ख । ३७ - ततः - क ख । ३८ - तत्स - ख ।

३९ - बलि - ख ।



नारदः—रश्मिगन्धाः प्रसादभाजनं<sup>३३</sup> भव । अमुना मार्गेण गतो देवपिः ।

(सुदक्षिणा अग्रतो गत्वा तथैव जगत् । पुनः किञ्चिदाकारं—गोपनं कृत्वा स एव मिलितस्तथैवोत्तरं दत्तवान् । एवं कतिवारं<sup>३४</sup> तयोराभाषणं बृत्तम् । ततो<sup>३५</sup> लक्षणैः संलक्ष्य पादयोः पलाशः ।)

सुदक्षिणा—मए लक्षणोहि विष्णाव तुमज्जेव सो देवदसिति<sup>३६</sup> ।

[गया लक्षणैः विज्ञातं, त्वमेव स देवधिरिति ।]

नारदः—(दण्डमुद्यम्य) अयि ! मुञ्च, मुञ्च । बुद्धस्य मे विप्रस्य कथं तपो-विधममाचरति ? नो चेद् दण्डेन ताडयामि शपेन वा ।

सुदक्षिणा—परिध मे सम्पदं जीविदासा पिअसहीए दुवसपडीआरो<sup>३७</sup> जाव ण भोदि । [नास्ति मे साम्प्रतं जीवितासा प्रियसख्या, दुःखप्रती-कारो यावत् भवति ।] (इति गाई चरणी धृतवती ।)

नारदः—(उच्चैः विहस्य) साधु साधु, यथायं नामधेया सर्वं त्वयि—कुशलऽस्ति त्वम् । स एवाहं मृनिः । कथय प्रयोजनम् ।

नारदः—रश्मिणीक कृपापात्र होअह । एही बाटे देवपि भेलाह ।

(सुदक्षिणा आन आग जाय ओहिना बाजलि । फेर किछ छप छपाय ओएह भेटलथिन ओ ओहिना उत्तर देलथिन । पहिना कइयेक बेर दुहू गोठा मे गप्प भेल । तखन लक्षणसँ चिन्हि पएर धर खसलि ।)

सुदक्षिणा—हम लक्षण सँ बुझलहुँ अही ओ देवपि भिकहुँ ।

नारदः—(लाठी उठाहि) हए ! छोड़ह, छोड़ह । हमरा बुद्ध ब्राह्मणकेँ तपस्वा मे विघ्न कियेक करैत छह ? नहि त लाठी स पिठबहु वा थाप देवहु ।

सुदक्षिणा—एखन हमर सखीक जीवनक आशा नहि अछि यावत् दुखक प्रती-कार नहि होइछ । (कसिकेँ पएर गहि लेछ ।)

नारदः—(जोर सँ हँसि) वाह, वाह । अर्थक अनुकूपे नामधाली सभकाज मे पटु छह तैं । हम ओएह मृनि छी । कहह प्रयोजन ।

३३ - अना—ख । ३४ - वारानयो - ख । ३५ - ००० ख ।

३६ - ईसिति - ख । ३७ - पवीआर - ख ।

सुदक्षिणा—संपदं जीविद-संज्ञं यो पिअसही संपत्ता । तयो अरिध दाणि परि-हरसस<sup>३८</sup> समओ । ता तत्थं गदुअ<sup>३९</sup> पिअसहीए जीविद-प-डीआरं<sup>४०</sup> करेदु अज्जो । [साम्प्रतं जीवितसंज्ञं नः प्रियसखी सम्प्राप्ता । ततो नास्ति इवावीं परिहासस्य समयः । तस्मै तत्र गत्वा प्रियसख्याः जीवितप्रतीकारं करोत्वार्थः ।]

(नारदः तया सह कम्पाभावने प्रविश्य कमण्डलु-जलेन रश्मिणी-मण्डपिच्छति । पुष्पादिकं क्षिपति । रश्मिणी सौता लक्ष्म्या उप-विश्याऽन्नलोकयति ।)

रश्मिणी—(जनान्तिकम्) सहि । को एसो दिअवरो ? [सखि ! क एव हिज-वरः ?]

सुदक्षिणा—सहि ! एसो ज्जेव गुणीसरो नारदो निरिक्खं भिअं आपेदुं सम्-त्थो । [सखि ! एए एव मुनीश्वरो नारदः श्रीकृष्णं शीघ्रमाभेत्तुं समर्थः ।]

(रश्मिणी सहर्षमुत्थाय पुनः पुनः प्रणम्य स्वहस्तेनैव पादौ

सुदक्षिणा—एखन हमर सखीक प्राण सम्बेह मे पड़ि गेल अछि । तैं एखन हँसीक समय नहि अछि । अतः ओतथ जाय प्रियसखीक जीवाक उपाय करखु अर्थ ।

(नारद हुनक संग कम्पाभावने प्रवेश करि कमण्डलु जल सँ रश्मिणी केँ सिक्त करैत छथि । फूट आदि नैकरैत छथि । रश्मिणी होश मे आवि बैसिकेँ तर्कैत छथि ।)

रश्मिणी—(पतङ्गुसकौ कय) सखि ! ई ब्राह्मणअष्ट के थिकाह ?

सुदक्षिणा—सखि ! इयेह मुनीश्वर नारद श्रीकृष्णकेँ शीघ्र अनया मे समर्थ छथि ।

(रश्मिणी सहर्ष अठि बारें बारें प्रणम्य कय अपनहि हाथेँ

३८ - पवीआ - ख । ३९ - गदुअ - ख । ४० - पवीआर - ख ।



प्रकाश्य तज्जलं शिरसि दधाति । अत्यादरेणातिविस्तरं कृत-  
वती ।)

नारदः—राजपुत्री ! मनोरथ-सिद्धिं द्रुतं तवाप्स्यतु । तवादरेणातिमुष्टो-  
रिभ । किं वा तव प्रियमर्थं मया सम्वादनीयम् ?

(रविमणी सलज्जमधोमुखी तिष्ठति ।)

नारदः—(विहृष्टः) प्रच्छन्नेन मया सर्वमेव धृतम् । (इति तद्रुतं गीतारिकं  
पठति ।)

(रविमणी अतीव लज्जते)

सुदक्षिणा—(मुखमुन्नमय्य) पिअरहि ! का एत्थ तपोधने लज्जा ? एदेन  
सर्वं क्कणिणं ज्जेव । ता कवेदु ि असही । कज्जसिद्धी सत्ति भोदु ।  
[प्रियसखी ! काऽपि तपोधने लज्जा ? एतेन सर्वं ज्ञातमेव । तत्  
कथयतु प्रियसखी । कार्यसिद्धिः कैटिलि भवतु ।]

रविमणी—सुपोधु अज्जो । [शृणोश्वायः ।] (गीतेनाथेदयति)—

दुनु एएर पछारि, ओ जल मथि पर लेत छथि । अरयन्त आवर  
ही अतिवि-सत्कार करैत छथि ।)

नारदः—राजपुत्री ! अहाँक मनोरथ कीय सिद्ध हो । अहाँक अदर से  
अत्यन्त सम्पुष्ट छी । आव भी अहाँक प्रियकार्य हम करी ?

(रविमणी लज्जायलि नीचाँमुहें छथि ।)

नारदः—(हँसि) गुंकायकेँ हम अवकिछु सुनलहुँ । (हुनक कहल गीत आवि  
पढ़ैत छथि ।)

(रविमणी अत्यन्त लज्जाहत छथि ।)

सुदक्षिणा—(हुनक सुहृ उठाय) प्रियसखि ! एहि तपस्वीक लग कोन लाज ?  
ई तँ सबटा बुझनहि छथि । तेँ कहियंगु प्रियसखी । कार्यसिद्धि  
भेटय हो ।

रविमणी—सुनल जाओ आर्य । (गीतक द्वारा कहैत छथि)—

[गीत सं० — ४३]

मुनिवर ! करिअ तहिन परकार ।

नगर द्वारका गए पुनु आनिअ, तोरित नन्दकुमार ।। ११॥  
दनुज - मनुज अवतार महीतल, चेदि - नृपति शिशुपाल ।  
कुमरे जोहल घर, से यदि गृहत कर, जीव तेजय तत्काल ।।  
तीनि - भुवन पति अनुगत जन गति, करणामय गोपाल ।  
समुचित घर हमे मन अवधारल तेज सकल महिपाल ।।  
मिरितमिदिन पूजय हम जाएथ, बाहर देव - अंगार ।  
तखने गहपु कर देव गदाधर, तेहि पय अछि सुविचार ।।  
सातभद भए मुनिराजे कहल पुनु, मने अनु मानिअ जान ।  
नृप - कुमार ! अभिलाष पुरत बुझ, सुमति रमापति भान ।।

नारदः—  
मास्यामि सुर्ण नगरी तदीयां  
तपोबलात् कृष्णमिहाऽऽनगाभि ।  
रामेण सार्धं यदुभिः समेतं  
प्राप्तं विजानीहि कुमारि ! मा सुचः ।। १२॥

रविमणी—(जनान्तिकम्) पिअरहीओ ! पुणोवि ममावत्थं विष्णुविहि अज्जम् ।  
[प्रियसखी ! पुनरपि ममाऽवत्था विज्ञापय आर्यम् ।]

[गीतसं० — ४३]

तहित = तेहन । परकार = उपाय । गए = जाय । तोरित =  
गुरत । दनुज-मनुज = नरराक्षस । चेदि नृपति = चेदि देशक  
राजा । अनुगत = चरणगत । अवधारल = विचारल । मि. मन्दिति  
= मिरिजा । देव अंगार = देवमन्दिर । गदाधर = गदाधारी  
श्रीकृष्ण । तेहि पय = हुनक चरणमे ।।

नारदः—हम श्रीकृष्णक नगरी द्वारका कीय जायव ओ तपोबल से श्रीकृष्णकेँ  
एतय आनय । बलरामक संग यावत सभ से युक्त श्रीकृष्णकेँ एतय  
पहुँचले बुझ । कुमार ! सोक जगु करी ।। १२॥

रविमणी—(कनफसकी) प्रिय सखीलोकनि ! आओरो हमर दशा आवेकेँ  
बुझवियतु ।



सखी—मुनिराज ! प्रियसखीए अवस्थ वि कहिनिज्जं सिरिकण्ठे । [मुनिराज !

प्रियसखी अवस्थाएनि कथनीया श्रीकृष्णाय ।]

नारदः—सर्व ज्ञातेनैव मया, तथापि पुनः कथयताम् ।

सखी—(गीतेन कथयतः—)

[गीतसं०—४४]

पुरुवहि ओ रे ।

ससिमुखि परिजन - मुखे सुन<sup>४५</sup>, ए कि तुअ पुन  
अनुखने नेह उपज दुन<sup>४६</sup> ॥

विधिवसें ओ रे ।

बदन - इच्छु तुअ देखि धनि, ए कि भेलि जनि,  
प्रेम - पयोनिधि निमगनि<sup>४७</sup> ॥

अकमिते ओ रे ।

कोकिल पञ्चम कल धुनि, ए कि सेहे सुनि,  
पुन पुन मुख<sup>४८</sup> दुसई गुनि ॥  
तलपहि<sup>४९</sup> ओ रे ।

अति कोमल नलिनी - धल, ए कि विअ भल,  
परसे दगध होअ अनुवल ॥

बुढ़ सखी—मुनिराज ! प्रियसखीक दशा सेहो श्रीकृष्णके कहल जाय ।

नारदः—सब टा हमरा बुझले अछि, तथापि पुनः कह ।

बुढ़ सखी—(गीतक द्वारा कहैत छथि)—

[गीतसं०—४४]

पुरुवहि = पड़नहि । ससिमुखि = चन्द्रमुखी । परिजन मुखे  
= परिचारक मुखे । अनुखने = सतत । नेह = स्नेह । दुन = द्विगुण ।  
विधिवसें = संयोग सौ । बदन-इच्छु तुअ = अहो क चन्दमुख ।  
प्रेमपयोनिधि = प्रेमक समुद्र भे । निमगनि = डूबलि । अकमिते =

४५ - मुन - ख । ४६ - दुन - ख । ४७ - निमगनि - क ख । ४८ - पुन

पुन मुख - ख । ४९ - तलपति - ख ।

अवधिहु ओ रे ।

न मिलत यदि निरदय हरि, ए कि छन भरि<sup>५०</sup>,  
न जिनति आलि कोनहु परि ॥

मुनु धनि ओ रे !

सुमति रमापति बुझि कह, ए कि<sup>५१</sup> धिर रह,  
पुनत मनोरथ<sup>५२</sup> हरि तह ॥

नारदः—<sup>५०</sup>वाच्यं मयाऽन्तर्यामिपतोऽख्याः  
तत्सन्निधौ राजकुमारिकायाः ।  
यथाऽऽनभिष्वररश्मिन्दनेन—  
स्तत् साधनीयं बहुना किमपि ॥२५॥

(इत्याकाशमार्गेण निष्कान्तः)

सखी—भट्टिदारण ! अम्हे दअ <sup>५१</sup>हरि - आअस - वृत्तन्त देवीए निवेदेह<sup>५२</sup> ।  
[भट्टिदारिके ! आवाम् इमं हर्षागम वृत्तन्त देव्यं निवेदयामः ।]  
(इति तथा कुरुतः ।)

अकस्मात्, एकाएक । तलपहि = तिलाश्रीत पश । तलिनी-धल =  
पुराणिन पति । परसे = स्पर्श सौ । दगध = जरत । अवधिहु =  
निर्धारित समय तक । हरि = कृष्ण । आलि = सखी ।

नारदः—श्रीकृष्णक लग हम एहि राजकुमारीक हृदयस्थित सकल भाव बाजब,  
जेना कय कमलनयन श्रीकृष्ण एतय अओताह से हम करब । विशेष  
एतय की कह ॥२६॥

(ई कहि आकाश मार्ग सौ बहार भय गेलाह ।)

बुढ़ सखी—राजकुमारी ! हमरा बुढ़ गोटय श्रीकृष्णक आगमनक समाचार  
महारानी के कहि अबैत छियनि (तहिना करैत छथि ।)

५० - धन भरि भरि - ख । ५१ - की - क ख । ५२ - ओ - ख ।

५३ - वाच्यमया वेदमतेन - ख ।

५४ - हरिमन्वृत्तन्त - ख । ५५ - निवेदेति - ख ।



(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति रुक्मिणी-परिणये नारदप्रवेशं नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥

(सम बहार भय गेल)

रुक्मिणी-परिणय मे 'नारदके' पठाएव' नामक  
पाँचम अङ्क समाप्त

## अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः त्रिंशति शिशुपालमानीय कलहवर्धनः)

कलहवर्धनः—(कुमार-समीपमागत्य) युवराज !

सम्प्राप्तश्चैवभुवस्तव नगरनिदं मागधास्ये । समेतं  
पूर्यन्तां रत्नकुम्भाः सुविमल सलिलैः परलवास्तवकथाः ।  
न्यस्वन्तां तोरणानि प्रतिशवनमतो दीपतां दीपपङ्क्तिर्  
विप्राः सम्पूर्णकामाः श्रुतिसुभगतरं शान्तिमन्त्रं पठन्तु ॥२७॥

(नेपथ्ये दुग्धुभि-व्यतिः)

छठम अङ्क

(शिशुपाल के आनि कलहवर्धन प्रवेश करेछ ।)

कलह०—(कुमार-रुक्मीक समीप आनि) युवराज !

मगवराज जरासन्ध प्रभक्तिक सहित वैदिराज शिशुपाल अहाँक नगर  
पहुँचि गेल छथि । पवित्र जल हाँ भरल परलख हाँ युक्त मुँहबला  
रत्नक घैल सभ राखल जाय । प्रत्येक भवनक सोझाँ तोरण (सिंहा-  
राज) सजाओल जाय । दीपक पाँती राखल जाय ओ पूर्णमनोरथ  
ब्राह्मणलोकनि वेदक मधुर शान्तिमन्त्र पढ़थू ॥२७॥

(नेपथ्य मे बाजाक आवाज)

राजा—सर्वे भविष्यति । युवराज ! भवता चैवराजं प्रतीक्ष्य तेषु तेषु वेदमसु  
निवेद्यनीया वरपानिका नृपाः, परिचरणीयाश्च ।(रुक्मी सहर्षमुत्थाय निष्क्रम्य च कलहवर्धनेन सह सैन्यमालो-  
कयति । तत्र गीतम्—)

[गीत सं-४५]

आयल नृप दमघोष कुमार । भीषम भुवति<sup>१</sup> भवत दुभार ॥  
रथ मातङ्ग गुरङ्ग दुरन्त । कोने तसु गगत पदाति अनन्त ॥  
बहुविध<sup>२</sup> वरन पताका भास । जनि सुरपति धनु उगल अकास ॥  
वन बुनि यम रत दुग्धुभि बाज । निरमल वसन भवन नय छाज ॥  
तसु सयना कल करव बखान । हरिवद प्रणत रमारति मान ॥

(रुक्मी सानन्ध सर्वेषां विनयादिकमाचरति)

राजा—तव श्रेयत । युवराज ! अहाँक वैदिराजक प्रतीक्षा कय निर्धारित वर  
सभ मे वरियाही मे आयल राजासभ के उहराओ ओ स्वागत कर ।(रुक्मी सहर्ष ऊठि, बहार भय कलहवर्धनक संग सेनासभ के  
वेधैत छथि । ततय गीत—)

(रुक्मी आनन्दपूर्वक सभक प्रार्थना आदि करैत छथि ।)

[गीत सं-४५]

दमघोष-कुमार = राजा दमघोषक पुत्र शिशुपाल । मातङ्ग = हाथी ।  
गुरङ्ग = घोड़ा । दुरन्त = अतिबलशाली । पदाति = पैदल सेना । वरन  
= रंगक । भास = शोभित । सुरपति-धनु = शत्रुघ्नपुत्र, पनिसोला । वन  
बुनि = मेघक गर्जन । रत-दुग्धुभि = युद्धक बाजा निरमल वसन =  
स्वच्छ वस्त्र । भवन-नय = भवन सभ मे । छाज = शोभित । तसु =  
इनक (शिशुपालक) । सयना = सेना ।



रुक्मिणी—(आकर्ष्य) सहि ! कहि दाणि<sup>१</sup> खणे खणे दुन्दुही ताडीयदि ?  
[सखि ! वव इदानीं क्षणे क्षणे दुन्दुभी ताडयते ?]  
सखी—सहि ! आअयो कखु ह्मासो<sup>२</sup> चेदि-भुवई । [ सखि ! आगतः खलु  
हताशः चेदिभूषति । ]  
रुक्मिणी—(सवार्णं गीतेन वदति—)

[गीतसं०—४६]

उपगत भेल सिधुपाल । न देखिअ देव गोपाल ।।

साजनि ॥४७॥

अभगति अति बुझि मोरि । विमुक्ति भेलि जनि मोरि ।।

की<sup>३</sup> जनि विधि बड वास । ते<sup>४</sup> नहि<sup>५</sup> पुर मन काम ।।

पुरुष कलुष-चय जानि । न गहण हरि मोर पानि ।।

जदि न<sup>६</sup> आओत अचराज । मोहि जीवने नहि काज ।।

सुमेति रमापति भान । अवस आओत भगवान ।।

सखी—पिअसहि ! समस्तसहि समस्तसहि । [प्रियसखि ! समा-  
श्वसिहि, समाश्वसिहि ।]

रुक्मिणी—(सूनि) सखि ! कतय एखन लगले लगले बाजा बजैछ ?

दुहु सखी—सखि ! आवि गेल देवजख्खा (जकर आशा मारल छै) सिधुपाल।

रुक्मिणी—(नोर सहित गीतक द्वारा व्रजैत छथि—)

[गीतसं० ४६]

उपगत = उपस्थित । अभगति = अगति । विधि = विधाता,

भाग्य । काम = विपरीत । कलुष चय = वापक डेर । पानि = हाथ ।

अचराज = कृष्ण । अवस = अवश्य ।।

दुहु सखी—प्रिय सखि । धैर्य धरू, धैर्य धरू ।

३. दाणि रमणी क्षणे दुन्दुही. स. । ४. चेदि चेदि भुवई. स. ।

५. कीवहु. स. । ६. X - स. । ७. ते. स. ।

रुक्मिणी—कथं गुणीसरो वि ण आअदो ? [कथं सुदीश्वरोऽपि नागतः ?]  
(वामाखिरूपन्दनादिकं सूचयित्वा पुनर्गीतेन वदति—)

[गीत सं०—४७]

किए दहु<sup>१</sup> अकमित सञ्चर, उर भुज लोचन वाम ।कहिअ विचारि विदुषि<sup>२</sup> सखि, अबहु पुरत मोर<sup>३</sup> काम ।।

जजो किछु पुरुष कयल हमे, गुरमन्दिर निरमात ।

जत उपवाग निवस विधि, वसन विभूषण दान ।।

कञ्चन रजत तुला देल, विरचल बिगल सडाम ।

तजो हरि हमर गहंथ कर, गुर कम सवल अभाय<sup>४</sup> ।।<sup>५</sup>तयर निकट उपगत हरि आदि, करिअ अनुमान ।

सखिगत भाष सगुन बुझि, सुमेति रमापति भान ।।

(ततः प्रविशति नारदः)

नारदः<sup>६</sup>—नृपकुमारिके । बिन्दुमा बड<sup>७</sup> सै । समागच्छति श्रीकृष्णः ।रुक्मिणी—की नारदो नहि अयलाह ? (वामा आखि फड़कव सूचित कय फेर  
गीतक द्वारा व्रजैत छथि—)

[गीतसं०—४७]

अकमित = अकस्मात्, एकाएक । सञ्चर = फड़कैत अछि । उर भुज

= छाती, बाहि ओ आँखि तीनूक वामा भाग । विदुषि = बुद्धिआरि ।

गुरमन्दिर = देवताक भवन । कञ्चन रजत = सोना ओ खानी । तुला देल =

तुलादान कयल (तराजू पर अपन शरीरक बराबर सोनाक दान कयल ।)

विरचल = बनेबाओल । सडाम = पोखरि । उपगत = आगल । भाष =

बजैछ ।।

(तखन नारद प्रवेश करैत छथि ।)

नारद राजकुमारी ! भागमन्ति छी । अवैत छथि श्रीकृष्ण ।

८. फिअदहु. स. । ९. विदु. मुखि. क. । १०. मन. क. । ११. अनु-  
मान. ख. १२. ...



हस्मिणी—(सामन्त्रं प्रणम्य<sup>१४</sup> अतिसत्कारं कृत्वा) सहि सुदक्षिणे ! विष्णा-  
वेहि<sup>१५</sup> अर्जुन, कुदो वट्टदि<sup>१६</sup> दाणि अज्जल्लो ? [सखि सुद-  
क्षिणे ! विज्ञापय आर्यं, कुत्र वर्तते इदानीमार्यपुत्रः ?]

सुदक्षिणा—(पृच्छति ।)

नारदः—(श्लोकेन—) मम वचनमशेषतो निशम्य

जगमास ह्य हरिः पुरः प्रतस्थे<sup>१७</sup> ।

यदुक्त्वमुपनीय रोहिणेयम्

स्तमनुजगाम वृत्तायुधो रथस्थः ॥२८॥

तत्रैवार्थमात्रं तवाश्वासनार्थं तेनानुज्ञातस्तपोवलेन भीततेयादपि  
प्रागुपगतोऽस्मि ।

हस्मिणी - ( सामन्त्रं प्रणम्य पूजयति ।)

नारदः—मया पुनरपि श्रीकृष्णनिकटमेव तव वृत्तान्तवक्तव्याय सम्मते । (इति  
निष्क्रान्तः ।)

हस्मिणी—(आनन्दपूर्वकं प्रणाम कय ओ अतिसत्कार कय) सखि सुदक्षिणे !  
पुच्छिदगु आर्य नारदके<sup>१८</sup> ये कतय छथि एवम आर्यपुत्र (मन मे संक-  
ल्पित पति श्रीकृष्ण) ।

सुदक्षिणा—(पुछैत छथि ।)

नारदः—(श्लोकका द्वारा) -- हमर वचन पुरा पुरा सुनिके<sup>१९</sup> मरुड पर चडि  
श्रीकृष्ण प्रस्थान कयलनि । यादव-सेना लय बलराम अस्थ धारण  
कय रथ पर चडि हुनक पाछ सँ बिदा भेलाह ॥२८॥

सखन आधा बाट मे अहाँक आश्वासनक हेतु हुनक आज्ञा पाबि तयस्माक  
बले मरुडहु सँ पहिनहि आयल छी ।

हस्मिणी - ( आनन्दपूर्वक प्रणाम कय पूजा करैत छथि ।)

नारद - हम पुनः श्रीकृष्णक समीप अहाँक हाल-चाल कहवाक लेल जाइत  
छी । (बहार मय गेलाह ।)

१४—प्रणमति सत्कारं - छ ।

१५ - विष्णवेहि - क छ । १६ - बट्टदि - छ । १७ - प्रतस्थे - छ ।

(नेपथ्ये शङ्खध्वनिः)

राजा—(आकर्ष्य) नयसागर ! पाञ्चजन्यस्यैव ध्वनिरुपलक्ष्यते । तदवगम्य-  
ताम् ।

कञ्चुकी—(अवलोक्य पुनरागत्य) महाराज ! निर्णीतं मया । (श्लोकेन वदति) -

आयातो मधुसूदनस्तव पुरं रामाविमि यदिनीः

सार्धं देत्यरिपु। सग्रेन्दुमकिरादासह्य सग्रेन्दुरः ।

तं चाऽनीय विनीय सम्प्रति पुरो गत्वा समाधीयतां

सम्यक् पूजनमस्य तेन भविता पूर्वापरादक्षमा ॥२९॥

राजा - सम्पुपदिष्टम् । (इति बहि गत्वा श्रीकृष्णस्य आतिथ्य-पूजनादिकं  
विधाय सैन्यगुपवेश्य पुनरावातः ।)

(ततो नगरस्थितः श्रीकृष्णमवलोक्य भावयति—)

(नेपथ्य मे शङ्खक आवाज)

राजा (सुनि) नयसागर ! पाञ्चजन्य शङ्खक सनक ध्वनि सुनि पड़ेछ । से  
बुझ सँ ।

कञ्चुकी - (देखि केर आबि) महाराज ! हम निर्णय कयल \* (श्लोकका  
द्वारा वर्णित छथि) -

अपनेक नगर मे बलराम आदि यादवक संग मरुड पर  
चडि सग्रेन्दुर मधुसूदन देत्यरि श्रीकृष्ण सीघ्रता सँ आबि गेलाह  
अछि । एखन आगू जाय हुनका आबि विनती कय विधिपूर्वक  
हुनक पूजा कयल जाओ, ताहि सँ पहिलुका अपराधक क्षमा भय  
पायत मरुड ॥

राजा—नीक विचार देलहुँ । (बाहर जाय श्रीकृष्णक अतिविस्तरात् ओ  
सेनाकरहवाक व्यवस्था कय पुनः अवैत छथि ।)

(तखन नगरक स्त्रीमय श्रीकृष्णके देखि—)



[गीतसं०--४८]

इन्दु<sup>१</sup> - विनिन्दक ओ रे हरिसुख ।  
 देवितहि हरल सकल दुख ॥  
 बहुत - जनम तपे ओ रे पाओल ।  
 लोचन - मुगल जुड़ाओल ॥  
 रूप उपमा नहि ओ रे होअ कहि ।  
 जनि<sup>२</sup> रतिपति अवतर महि ॥  
 विहि कुदिवस मोर ओ रे भेटल ।  
 ते जनि माधव भेटल ॥  
 हरपि गहथु हरि ओ रे, तसु कर ।  
 कुमुदिनि मिलथ सुधाकर ॥  
 सुमति रमापति ओ रे, दिद कह ।  
 कुदिवस नहि निरवधि रह<sup>३</sup> ॥

श्रीकृष्णः—(संन्यादिकं निवेश्य स्वयं विश्राम्य च नारदं प्रति, जनाभितकम्)  
 देवर्षे ! कथ्यतां तदीया वार्ता ।

नारदः—तद्वातां मया द्वारवत्यामेवोक्ता । तथाऽप्यऽऽकर्ण्यताम्<sup>१</sup> । (गीतेन  
 वदति—)

गीतसं०--४८

इन्दुविनिन्दक = चन्द्रमाक निन्दा करय वाला । लोचन-मुगल =  
 बुलू बाँसिल । रतिपति = कामदेव पृथ्वी पर अवतार लेने होथि । विहि  
 कुदिवस = भाग्यक अधलाह दिन । सुधाकर = चन्द्रमा । दिद = निदवसा ॥

श्रीकृष्ण - (सेना आदिक समावेश कय, स्वयं विश्राम कय नारदक प्रति कन-  
 फू सजी कय) देवर्षि ! कहू हुनक समाचार ।

नारद—हुनक हालत ते हम द्वारके मे कहलहु<sup>२</sup> । तथापि सुन । गीतक द्वारा  
 कहैत छथि ।)

१ - एहि गीत के उपापतिक गीत संगह मे भूम हाँ राखल गेल अछि । वृत्तम्—

ओं रामवेश हा - 'उपापति' - ५० ५२ १ १० - जन - ख ।

१६ - रह - ख । २० - कर्ण्य : ख ।

[गीतसं०--४९]

आ हे माधव ! कि कहय तसु परितापे ।

पुअ गुन लुबुधि मुमुधि रह वरतनु,  
 अनुजन परिजन कापे ॥६०॥

देह अनल धर, गहन माल धर,  
 तलप अलप न सोहावे ।

बाँद गरल वम, हार उरग सम,  
 नयन नीन्द नहि आवे ॥

मलय पवन वह, सेहओ ने धनि सह,  
 अधिक छाह<sup>१</sup> उपजावे ।

चानन<sup>२</sup> तरस परस नहि मानए,  
 दरस तरस मने<sup>३</sup> आवे ॥

मुसछि मुसछि सस, मेदनि<sup>४</sup> परवस,  
 जतनहु सखि न सम्भावे ।

जीवन धर धनि, अवधि आस गनि,  
 केवल गुअ अनिलावे ॥

हरि उपगत भेल, कुदिवस दुरि गेल,  
 पुरल सवे अभिमाने ।

[गीतसं०--४९]

तसु परितापे = हुनक दुःख । मुमुधि = मुग्ध । वरतनु = सुन्दरी ।  
 परिजन कापे = परिवारक लोक हुनक दशा देखि कैपैत अछि । अनल  
 आगि । तलप = तल्प, ओछान । अलप = थोड़वहु । गरल वम = क्षिप  
 जमिलैत अछि । उरग = सापा । मलय पवन = मलयपञ्चक हवा (दछि-  
 नाही) । परस = स्पर्श । दरस = दर्शनहि हाँ । तरस = आस, डर । मेदनि  
 पृथ्वी पर । परवस = पराधीन भय । सम्भावे = बर्जैत छथि । अवधि

२१ - बाह - ख । २२ - चानन - ख । २३ - मने - क ।

२४ - से धनि पर वस - क ।



वैरज अभिमतः याव सुभ<sup>२६</sup> नखतः  
सुमति रमावति भाते ॥

श्रीकृष्णः—(स्वगतम्) अहो प्रमादः ! मम कारणादेवा दुःखमनुभवति नृपकुमारिका ? (प्रकाशम्) देवर्षे ! सम्प्रतं तत्सन्निधौ भवता एवं वाच्यम् (श्लोकेन) :—

यथा विपीदश्यनिशं मृगाक्षी  
तथैव <sup>२७</sup>सन्त्यस्तमवेहि मामपि ।  
भूताल—वर्गान् परिभूय तत्करं  
हस्ता<sup>२८</sup> ग्रहीष्यामि जलात् प्रभाते ॥३०॥

नारदः—भद्रम् । तामाश्वास्य स्वरार्थं कुमारं नृपं देवीं च निथोष्य तस्य हरणवतरे पुनर्देवमवलोकयामि । (इति निष्क्रम्य तथा कुलशान्तिम् ।)

आस = विरहक सीमा (समाप्तिक) आशा । तुष्ट अभिलाषे = अहो क प्रप्तिक मनोरथ । हरि उपगत = श्रीकृष्ण उपस्थित । अभिमत = अभीष्ट । सुभ नखत = शुभ नक्षत्र = शुभ समय ।

श्रीकृष्ण - (स्वगत) हाथ रे हमर गलती ! हमरे कारणे एना दुःखक अनुभव कय रहल छथि राजकुमारी । (प्रकाश) देवर्षि । एखन हुनका लग जाय अहाँ ई कहबनि । (श्लोकक द्वारा) - जहिना हरिजनक आँखवाली ओ दुःखी छथि तहिना हमरो सन्त्यस्त जानिय । काहि भितर राजासभकेँ बलपूर्वक दबाय हुनक हरण कय लग जयबनि ॥३०॥

नारद—बड़ दीवा हुनका आश्वासन दय, सीधताक हेतु कुमार, राजा ओ महारानीकेँ नियुक्त कय रुक्मिणीक हरणक अवसर मे देशक दर्शन करब । (बहार भय तहिना कयलनि ।)

(नेपथ्ये—भो ओ ! जरासन्ध-प्रभृतयो नृपाः ! प्रभात-समयो वृत्त-स्ततः<sup>२९</sup> राज्ञीमावन्तु भवन्तो<sup>३०</sup>ऽश्विका-गृहगमनाय । तद्गुण-नाय रुक्मिणी नमिष्यति । तदं रक्षार्थं गवद्भि र्यतितव्यमिति ।)  
(पुनर्नेपथ्ये दुन्दुभि-स्थितिः)

बलदेवः—(आकर्षणं) गतमेनिका अपि राज्ञीभवन्तु ।

(ततः सर्वे बाधवास्तथाऽऽचरन्ति ।)

(ततः पृथिवीं पूजयाम्भार व्यग्रकराभिः परिचारिकाभिः समं देवी ।)

देवी—(कम्पाभवनं गत्वा सहर्षम्) अइ सुदक्षिणो ! <sup>३१</sup>सुखोहणे ! तुम्हेहि रुक्मिणीए समं शिरिगोरिए मन्दिरं<sup>३२</sup> गस्तब्धं । तद् उच्छेहि । [अपि सुदक्षिणो ! सुखोभने ! युवाभ्यां रुक्मिण्या समं श्रीगौरी मन्दिरं गस्तब्धम् । तद् उत्तिष्ठन्तम् ।]

(नेपथ्य मे—'अओ जरासन्ध आदि राजालोकनि ! भोर भय भेल, तेँ तैयार होउ अहाँसभ गौरीक मन्दिर जयवाक लेल । हुनक पूजाक हेतु रुक्मिणी जयसीहि । हुनक रक्षाक हेतु अहाँलोकनि पतत करब' ।)

(फेर नेपथ्य मे बाजाक आवाज)

बलदेव—(सूनि) हमरो सैनिक तैयार होजओ ।

(तखन सभ बाधव तहिना करैत छथि ।)

(तखन पूजाक सामग्री सँ व्यस्त हाथवाली परिचारिकासभक संग सहा-शान्ति प्रवेश करैत छथि ।)

देवी—(कम्पाभवन जाय सहर्ष) अए सुदक्षिणा ! सुखोभना अहाँ दुहू गोठय रुक्मिणीक संग श्रीगौरीक मन्दिर जाउ । तेँ छठैत जाउ ।



(सखी सखिमणी<sup>३२</sup> करे गृहीतया उक्थापयतः<sup>३३</sup> । ततः सर्वाः श्रीगौरी<sup>३४</sup>-भजनं पुति चलिताः । तत्र गीतम्—)

[गीतसं० - ५०]

निज हित<sup>३५</sup> मने अवधारी ।

गौरि कुजव<sup>३६</sup> चलु राजकुमारी ॥ ५० ॥

पुर - वनिता तसु सङ्ग<sup>३७</sup> अनेके ।

रूपे<sup>३८</sup> मनोरम निपुन विवेके ॥

अरुन - वसने जित अरुनक जोती ।

भुषन मनि कञ्चन गजमोती ॥

लोहित फूल अगुलेपन माले ।

सिन्दुर नेओज<sup>३९</sup> तमोर विसाले ॥

गुगुल अगर धन करे दीपे ।

लग सखिजन तसु चलन समीपे ॥

सुमति रमापति कह दिड जानो ।

सखे अभिमत फल पुरख भवानी ॥

सखी—(जनान्तिकम्) सहि ! समर्थ हियअडिठव हरिस-वुत्तन्त<sup>४०</sup> कखेहि ।  
[सखि ! ताम्रभूत हृदयस्थित हृदय-तन्तं कथय ।]

(इह सखी सखिमणीको हाथ धर उठवैत छवि । तखन सभ श्रीगौरीक भजन दिख विदा होइत छवि । ताहि पुसंगक गीत—)

[गीतसं० - ५०]

निज = अरुन । अवधारी = हूँकि । पुर वनिता = नगरक स्त्रीजन । मनो-  
रम = सुन्दरि । निपुन = पट । अरुन-वसने = लाल वस्त्र ही । अरुनक = प्रातः  
कालीन सूर्यक । मनि कञ्चन = मणि ओ सोना । लोहित = लाल । अगुलेपन =  
चानन । नेओज = नेत्रेण । तमोर = पान । दिड = निश्चय । अभिमत = मनोरम  
बुह सखी—(कनकसुखी कय) सखि ! एखन हृदयक हृदयक समाचार कहू ।

३२ - सखिमणी - छ । ३३ - उक्थापिता-छ । ३४ - X - क ।

३५ - निमित्त - क । ३६ - पुजन - क । ३७ - रूप - ख । ३८ - सिन्दुर शंख  
गुगुल - क; नेओज तमोर - ख ।

सखिमणी—(संस्कृतमाश्रित्य इत्येकेन)—

किं मे वधातु गिरिजा पारिवाञ्छितार्थं

किं वा पुरवखिल-जीवहरः कुतान्तः ।

प्राणा, - स्तथाऽप्युभयथा भविताऽवसानं

दुःखस्य मेऽद्य सखि ! तेन हृदि प्रकर्षः ॥ ३१ ॥

सखी - सान्तं पाव ! विजयति । संपदं एरिस विप्रिभव-जं करेसि ?  
[शान्तं पावम् ! प्रियसखि ! ताम्रभूतमपि ईदृशं विप्रियवचनं  
करोषि ?]

सखिमणी - सहि ! कुधो उजेव निशीद<sup>४१</sup> तए ? [सखि ! कुत एव निर्णीतं  
स्वया ?]

सखी - जवो सपिहितो<sup>४२</sup> वासुदेवो । [यतः सत्तिहितो वासुदेवः ।]

(ततो मठस्थलं प्राप्य नदीः करवरणी प्रक्षाल्य प्रणम्य च मठं प्रवि-  
शन्ति । ततो सखिमणी पुरस्त्रीशामुपदेशविधानेन श्रीगौरीमर्चयति ।  
तत्र गीतम्—)

सखिमणी—(संस्कृतक अवलम्बन कय इत्येकक द्वारा)—

की त गिरिजा हमरा अभीष्ट वध देखू आ कि सभक जीवनके  
हरनिहार हमराज हमर प्राण लग लेयू—तँयो एहि दुनू तरहे  
आइ हमर एहि दुःखक अन्त होयत । हे सखि ! ताहि सँ हमरा  
हृदयमे प्रयत्नता अछि ॥ ३२ ॥

इह सखी—अनिष्ट पुर हो ! प्रियसखी ! एखनहुँ एहि प्रकारक अधलाह वधन  
बजैत छी ?

सखिमणी—सखि ! कोना एहि तरहक निर्णय कयलहुँ तो ?

इह सखी—जेँ कि समीपहि मे श्रीकृष्ण छवि ।

(तखन सुन्दर लग पटु<sup>४३</sup> चि सभ हाथ-पसर धीव ओ प्रणाम कय मठ मे  
प्रवेश करैत छवि । तखन सखिमणी नगरक स्त्रीजनक उपदेशक विधान सँ  
श्रीगौरीक पूजा करैत छवि । तत्र गीत—)



[गीतसं०-५१]

जय देवि गौरि मृगेन्द्र-गामिनि ।  
रविश तनु-रवि विजित-दामिनि  
दुरित खण्डित दिवस = दामिनि  
सम्भू कामिनि हे ॥

कहए तुझ पदकमल सेवा  
निज मनीरथ सकल लेना  
सेवि दुरगत रहल के वा  
मनुज\*१ देवा हे ॥

मन्थ अच्छत कुसुम पानी  
हमे निवेदिअ जत भवानी  
लिअ सकल परिवार आनी  
भगति जानी हे ॥

सदय लोचने\*\* मोहि विहारिअ  
तोरित आपद-गत संचारिअ\*\*  
अपन किकर गनि विचारिअ  
रिपु संहारिअ\*\* हे ॥

[गीतसं०-५१]

मृगेन्द्र-गामिनि = सिंह पर चलनिहारि । रविश = सुन्दर । तनु-रवि =  
देहक सौन्दर्य वा यमक सौ । विजित-दामिनि = विजुरीके जितनिहारि ।  
दुरित = पापके । दामिनि = राति । कामिनि = परनी । दुरगत = दुर्वृत्ता  
मे ॥ मन्थ = जानन । कुसुम-पानी = फूल ओ जल । भवानी = गौरी ।  
परिवार आनी = अपन परिजन के बजाय ॥ सदय लोचने = दयायुक्त  
आँखि सौ । तोरित = छीन । आपद-गत = विपत्तिक समूहके । किकर

\*१ = मनुज = क । \*२ = लोचन = क । \*३ = गवे विचारिअ = ख ।

\*४ = संचारिअ = ख ।

विसरि मने\*५ अपराध छलि जत  
भइए परसनि पुरिअ अभिमत  
भन रमावति कए प्रणति सत  
जरत अनुगत हे ॥

(इत्युपचारः सम्पूज्य, प्रणम्य वरं प्रार्थयति संस्कृतभाषित्व श्लोकेन—)

प्रणम्य गिरिश्रिया गिरिसुता गणेशाङ्गिता  
विषाय पुरतोऽञ्जलि सपदि देवि । याचे वरम् ।

\*५ विधूय दमधोषजं \*६ निखिल-भूषणैः समं  
अगृह्य करपङ्कजं भक्तु मे यद्यो माधवः ॥३॥

(ततः पुरस्त्रियो देव्ये सद्य निवेश भूषणैस्तं प्रसादयन्ति ।)

मारदा—(श्रीकृष्णनिकटं गत्वा) देवदेव ! रविमण्या देवी प्रपूजिता । साम्प्रत  
मठाद् बहिरागत्य गमिष्यति । सदाहस्ततां खगेन्द्र-युत्तरथः\*७ ।

= सेवक रूपमे गणना कय । रिपु = शत्रुके ॥ परसनि = प्रसन्ना । अभि-  
मत = अभीष्ट । सत = सैकड़ों । अनुगत = लागल ॥

(ई गवि पूजासामग्री सथ सँ पूजा कय- प्रणाम कय करतन प्रार्थना  
संस्कृतमे करैत छथि श्लोक द्वारा) —

गणेश-सहित महादेवक प्रिया पार्वती के प्रणाम कय आगू मे भटवय  
कल जोड़ि बरदान मईत छी जे हे देवि ! सकल राजाक संग दमधोषक पुत्र  
मिशुरालके\*८ वरयि के हमर करकमल पकड़ि माधव हमर स्वामी होषु ॥३॥

(तबान नगरक नारीसभ देवी गिरिजाके सद्यविछ निवेदित कय गहना  
सँ हुनका प्रसन्न करैत छथि ।)

मारदा - (श्रीकृष्णक लग जाय) देवदेव ! रविमणी गिरिजाक पूजा कय-  
लनि । आव मठ सँ बहार जावि लगतीह । तँ चढ़ गश्क-  
युक्त रथ पर ।

\*७ = सम = क । \*८ = विषाय/विधूय = क / विषाय/ख ॥ \*९ = ० ० ० - ख

(एक चरवाहा अनाथ) । \*१० = उत्तरथः = क उत्तरथः = ख ।



श्रीकृष्ण—(आनन्द प्रणम्य विहङ्गराजमाहूय सम्भाष्य ५९ च) वसनेश्वर !  
सम्प्रति गया रुक्मिण्या हरण विधेयम् । तत्र भवता तथाऽऽचर-  
णीयं यथा जरासन्धादयो यत्समीपं नाशन्ति ।

गरुड—(प्रणम्य) भगवन् ! पक्षवातेनैव तथा विधेयं यथा ।

(श्रीकृष्णः तथा कृत्वा रथमध्ये स्थितः ।)

नारदः—बलदेव ! स्वर्गती समराऽऽचरणात् ।

(बलदेवो यादवैः सह सज्जीभूय स्थितः ।)

(सखी रुक्मिणी करे विधूतप वहिः कुरुतः । ततः सर्वाश्चलिताः ।)

श्रीकृष्ण—(रुक्मिणीमवलोक्य सस्मितं स्वगतम्)।

किं काञ्चनीयं ललितका विधाति

सुसुप्तिता सा विविधैः प्रभूतैः ।

किं वा तद्विन् सञ्चरतीह भूमी

समन्विता सङ्घ-चकोर-चामरैः ॥३३॥

श्रीकृष्ण—(आनन्द सहित प्रणाम कय पक्षिराज गरुडके यज्ञाय ओ वुशाय)  
पक्षिराज ! एतत् ह्यं रुक्मिणीक हरण करव । तस्य अहाँ  
तेना करु केना जरासन्ध आदि द्वभरा लग नहि आबय ।

गरुड—(प्रणाम कय) भगवन् ! पक्षिक इसाते स तेना हम करव ।

(श्रीकृष्ण तद्विना कय रथ मे बैसि रहैत छथि ।)

नारद—बलदेव ! सीमता करु गुह्य करवाक लेल ।

(बलदेव यादव सभक संग तैयार भय रहैत छथि ।)

(हुह सखी रुक्मिणीके हाथ पकड़ि बहार करैत छथि । तखन सभ-  
केओ विदा होइत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(रुक्मिणी के देखि स्वगत)।

की ई सीताक लली अनेक फूले फुलायल शोभित भय रहल अछि

आ कि एहि पृथ्वी पर चन्द्रमा (मुख), चकोर पक्षी (आँखि) ओ

चामर (केश) सँ युक्त विजुरी चलैत अछि ? ॥३३॥

अथवा,

जगद् विधेतु ५९ किमिमामनङ्गो

देवः सुरम्यां विदधे पताकाम् ।

यतस्तदहनः कुक्षुपैरूर्ध्वः

सुविह्विताङ्गीमथलोकयामि ॥३४॥

यत् प्रक् पञ्चहारक-विघ्ने कथितं तत् सर्वं सत्यमेव । अहो विधातुः  
निमग्न-नैपुण्यम् ! (प्रकाशम्) देव ! आतां मध्ये का वा भीष्मसुता ?  
यतः

वरकाऽलङ्कुरपैश्चिचैर्धुंक्ताश्चन्द्रनिभातलाः ।

दृश्यन्ते कन्यकाः सर्वा निर्जेतुं नैव शक्यसे ॥३४॥

नारदः—(अङ्गुल्या दर्शयति, इलोकितं च वदति)।

संवेगं हरिणोक्षणा शशिमुखी कुन्दाभ-वन्तच्छति-

दंष्ट्रकण्ठवि-निन्दकाऽयश्चिचः कामस्या तद्विस्मयिनी ।

अथवा,

की कामदेव संसारके जितबाक हेतु एहि सुन्दर पताकाक रचना  
कयल अछि ? कियेक ते हुनक अइय अपूर्व फूलसभक चिह्न सँ  
युक्त अङ्गवाली हिनका (रुक्मिणीके) देखि रहल छी ॥३४॥

जे पहिने सीटी लय गेनिहार झाड़ाण कहलनि ते मम टा राखे । अहो  
विधाताक रचना - पटता ! (प्रकाश) देव नारद ! एहिमे के ओषमक पुत्री  
रुक्मिणी धिकीह ? कियेक ते,

अङ्गुल वस्त्र ओ गहनासभ सँ युक्त चन्द्रमुखी सभ कन्या देखि पड़ैत  
छथि । अतः निर्णय नहि कयल जाय सकैछ ॥३४॥

नारद—(अङ्गुली सँ देखावैत छथि ओ इलोकक द्वारा बजैत छथि)।

अवेह ई हरिणसगक आँखवाली, चन्द्रमुखी, कुन्दाक फूल सभक दाँतक  
चमकवाली, मधुरी फूलक कान्तिके अपन ठोर सँ निन्दित करयवाली, कान्ति



आजकामरे-कुन्तला कुचरचा सौवर्णकज्जक्षियं  
निन्दस्ती करिगामिनी प्रियसखीमालम्ब्य याति स्फुटम् ॥३६॥

श्रीकृष्णः<sup>१२</sup>—(उच्चैः विहस्य) देव ! पश्य, पश्य कौतूहलम् । आश्चर्यम् ।  
सपदि नृपसुताया वीक्ष्य सौन्दर्यमस्याः  
कुसुम-विक्षिप्त-बाणं निर्दयं पीडयमानाः ।  
विषसि-हृदय-देहाः सम्प्रमादुज्जितास्था  
रथ-कवि - पुरगेभ्यः सम्पतस्तीह वीराः ॥३६॥

तस्मादेव एवाऽस्मा हरणावसरः ।

रविमणी—(जानांतिकम्) मुदक्षिणे ! सम्पद्वि पा आजदो देखो<sup>१३</sup> । [सखि  
मुदक्षिणे । साम्प्रतमपि नागतो देवः ।]

सखी—सहि ! पेख, पेख, एसा उटज<sup>१४</sup> वृक्ष-पासो-बहिओ सदल इन्दीवर  
-तविच्छवी<sup>१५</sup> दीसइ । [सखि ! प्रेक्षस्व, प्रेक्षस्व, एष कुटज-वृक्ष-  
पावर्णोपस्थितः सदलेन्दीवर-तविच्छवि दृश्यते ।]

सं विजुरीत समान, कमलक चामरे सनक केशवाली, स्तनक सुन्दरता सौ  
सोमाक कमलक गोभाके निन्दित करैत हाथी सनक गतिवाली रविमणी  
प्रियसखीक आश्रय लय स्पष्ट जाय रहल अछि ॥३६॥

श्रीकृष्ण—(जोर सौ हसि) देव ! देखू, देखू अद्भुत बात । आश्चर्य ।

एहि राजकुमारीक सुन्दरताके देखि सटदय कामदेवक बाणसभ सौ निर्द-  
यतापूर्वक पीटल जाइत, हृदय ओ देह सौ विषसः हृदय-दाय अस्थ त्याग कय-  
निहार थीर सभ रथ हाथी ओ घोड़ा पर सौ एतय छसि रहल छथि ॥३६॥

ते इयेह हिनक हरणक समय थिक ।

रविमणी—(कनकसुखी कय) सखी मुदक्षिणा ! एहसन देव नहि अपलाह ।

बुह सखी—देखू, देखू इयेह अगस्त्य-वृक्षक लग उपस्थित पात सहित नील-  
कमल ओ विजुरीक समान गोभावला देखि पड़ैत छथि ।

५२—०—छ । १—विरज—क, ख । ५३—×—र (एहि पांसीक अन्वय) ।

५४—सखि—ख ; पक्ष सकसु तवइ सरल हिन्दुत्वतोच्छवी—क । ५५—तविच्छ-  
वच्छवी—छ ।

(रविमणी सहर्ष वामकशरणेण कुन्तलानवसार्य विलोकयति ।)

श्रीकृष्णः—(सत्वरम्) येनतेय ! करोतु भवान् प्रयत्नम् । मया पुनरिदानीम्  
अस्या नृपसुतायाः करकमलं कान्तमालम्ब्य सफलो निजावतारः  
क्रियते, प्रसभात् कृतार्थश्च । (इति द्रुतमुपगत्य रविमणीं करे  
गृहीत्वा रथे संस्थापयति ।)

रविमणी—हदी ! हदी !! अचचाहिअ संवृत्त !! । [हा थिक् ! हा थिक् !  
अस्थाहित संवृत्तम् !!] (इति वेपते) ।

श्रीकृष्णः—(श्लोकेनाऽऽश्वासयति ।)

अथि धरोर ! सरोरुह - लोचने !

भवविषादमिदं थिफल<sup>१६</sup> स्थज ।

न सहते तव मध्यसिह प्रिये ।

स्तनभराऽतिशयं दुःख - वेपनात् ॥३७॥

रविमणी—(किञ्चिदाश्वास्य) अज्जसत्त ! सहीओ जण कहि ? [आर्यपुत्र !  
सखी पुनः कुय ?]

(रविमणी सहर्ष वामा हाथक अग्रभाग सौ केश हठाय देखैत  
छथि ।)

श्रीकृष्ण—(सटदय) गहड़ ! करु अहाँ प्रयास । हम एखन एहि राजकुमारीक  
मुन्दर करकमल पकाड़ि अपन अवतार के सफल करैत छी ओ  
हठात् कृतार्थ सेहो । (सट दय लग जाय रविमणीके दुत हाथ धय  
रथमे बैसवैत छथि ।)

रविमणी—हाय ! हाय ! अनर्थ भेल !! (करैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(श्लोकक द्वारा आश्वासन दैत छथि)—

अए सुन्दर जाँध ओ कमल सनक आँखवाली ! एहि बिकल डर  
ओ दुःख के छोड़ । हे प्रिये ! अहाँक देहक ई मध्यभाग स्तनक  
भारके देहक कम्पन सौ नहि सहि रहल अछि ॥३७॥

रविमणी—(किछु आश्वासन मय) आर्यपुत्र ! बुह सखी कतय छथि ?



श्रीकृष्णः—ते<sup>५७</sup> अगि महर्षेस्तपोबलाद् आगमिष्यतः ।

(इति निष्क्रान्ताः<sup>५८</sup> ।)

(नेपथ्ये—‘ओ ओ जरासन्ध-पूतयो महारथिनः शृण्वन्तु भवन्तः’ ।  
इति गीतेन वृत्तमावेदयति) :-

[गीतसं०—५२]

रुकुमद कुमार, मगध - महिपाल ।  
नृप दमघोष सहित क्षिप्रपाल ॥  
सीमा सुनीय, कलिङ्गक - राज ।  
राय मिलि राखिअ<sup>५९</sup> भुजबल लाज ॥  
सबहु धनुर्धर भय एकठाम ।  
गहिअ कमान करिअ संग्राम ॥  
रुकुमिनि करे गहि रखहि चढ़ाय ।  
लय गेल गोविन्द<sup>६०</sup> गहड़ चढ़ाय<sup>६१</sup> ॥  
जाबहि तिज मन्दिर गहि जाय ।  
पथ सखी धानिअ ताहि<sup>६२</sup> छोड़ाय ॥  
हय पद प्रणत रमापति भाग ।  
सिंह नरेन्द्र महीपति जान ॥

श्रीकृष्ण—ओहो दुनू महर्षिक तपोबल सँ अशोतीहि ।

(सभ बहार भय गेलाह ।)

(नेपथ्य मे—‘अओ जरासन्ध आदि महारथीलोकनि ! अहोसम  
सुनेत जाउ’ । गीतक द्वारा घटनाक वर्णन करैत छथि ।)

[गीतसं०—५२]

कमान = धनुष । संग्राम = युद्ध । तिज मन्दिर = अन्तराल ।

५७ - तेवि - का । ५८ - निष्क्रान्तः - ख । ५९ - रोखिअ - क ।

६० - माधव ।

(पुन नेपथ्ये दुन्दुभि-व्यतिः । जरासन्धादयस्तथाऽऽवरन्ति ।)

रुक्मी - (सकोप) अश्वन्तु भूषा !

आनानीय स्वसारं स्वामहत्वा केवलां युधि ।

भवद्भिरवधातव्यं न प्रवेक्ष्यामि कुण्डनम् ॥३६॥

(इति प्रतिज्ञाय एकरथेनैव वावति ।)

नारदः—अश्वन् ! यास्यामि सम्प्रति भवद्भ्रातृ-संग्राम दर्शनाय ।

श्रीकृष्णः—देवर्षे ! सुदक्षिणा सुशोभने प्रियायाः समीपं द्रुते पापणीये ।

नारदः—ताभ्यां सहैव द्वारवतीमाममिष्ये । (इति निष्क्रम्य शयोः समीपमा-  
गतः ।)

सखी<sup>६३</sup>—(अवलोक्य सानन्दं पृणम्य) अज्ज ! केण उण उवाएण पिअसहीए  
पाणिमाह-महूरसक् अवलोइस्सामो ? [आर्य ! केन पुनरुवायेन पिय-  
सख्याः पाणिग्रहं महोत्सवमवलोकयिष्यामः ?]

(केर नेपथ्यमे बाजाक आवाज । जरासन्ध आदि सहित्ना करैछ ।)

रुक्मी—(कोध सँ) सुनेत जाउ राजालोकनि !

अपन बहिनिके विनु अपने ओ युद्ध मे कृष्णके विनु मारने  
अपन कुण्डन पुर मे प्रवेश गहि करव से अहोलोकनि जगैत जाउ ॥३६॥

(ई प्रतिज्ञा कय केवल एक रथसँ दीड़ैत छथि ।)

नारदः—अश्वन् ! एखन हम अपनेक भाइक युद्ध देखय जावब ।

श्रीकृष्ण—देवर्षि ! सुदक्षिणा ओ सुशोभना के पियाक समीप भट दय पहुँ-  
चाउ ।

नारदः—हुनका दुनूक संगहि हम द्वारका आवब । (निकलि ओहि दुनूक समीप  
पहुँचलाह ।)

दुहू सखी—(देखि आनन्दपूर्वक पृणाम कय) आर्य ! कोन उपाय सँ पियसखीक  
विवाह-महोत्सव देखब ?

६१ - चढ़ाय - ख । ६२ - सखी - ख । ६३ - उनी - क, ख ।



नारदः—तपोबलाद् आदीपणी-विद्यया नभोमार्गशीव तत्र पृथग्यामि । तावद्  
मुद्धमालोक्य ।

सखी—भद्र । [शब्दम् ।]

नारदः—पश्य । (गीतेन वदति) —

[गीतसं०—५३]

तोरित कुमर गेल हरि-सन्निधान ।

एकहि रये<sup>५४</sup> कर बड़ अभिमान ॥१॥

कतय जाह मावव ! कय जोरि ।

छाड़ि देह नृप-कुमरि मोरि ॥२॥

नहि तयो करव महारन<sup>५५</sup> जोर ।

सर परहारै हरव जिव तोर ॥३॥

सखी—अञ्जरिअं ! दुष्कर कथेदि भट्टिदारओ । कं वा भविस्सदि ।

[आश्चर्यम् ! दुष्कर कथयति भट्टिदारकः, किं वा भविष्यति ?]

नारदः—(विहस्य) पश्य,

हंसि काटल तमु धनुष गुरारि ।

नारधि<sup>५६</sup> हगल, तुरङ्गम चारि ॥४॥

नारद—तपस्याक बलसं आदीपणी नामक(लोकके) पलमे दूर पहुँचावधाली)

विद्याक द्वारा आकाशक बाट सँ ओतय पहुँचवैत छी । तावत् मुद्ध

देखू ।

दुनु सखी—बड़ दीव ।

नारद—देखू । (गीतक द्वारा कहैत छथि) —

[गीतसं०—५३]

हरि-सन्निधान = कृष्णक निकट । सर परहारै = बाणक प्रहार सँ ।

जिव = जीवन ॥१॥

दुनु सखी—आश्चर्य ! दुष्कर कहैत छथि राजकुमार, की होयत की ने ?

नारद—(हंसि) देखू, गुरारि = कृष्ण । तुरङ्गम = घोड़ा ॥४॥

सखी—हड्डी ! हड्डी ! सम्पद न भविस्सदि । [हा धिक् ! हा धिक् !  
सम्पत् न भविष्यति ।]

नारदः—न भेतव्यम् । पश्य, पश्य—

भइए<sup>५७</sup> पदाति खइग लय हाथ ।

गेल कुमार निकट यदुनाथ ॥५॥

येहओ काटि पुनु<sup>५८</sup> हसि यदुनाथ ।

कुमर वाञ्छल रघुहि लगाव ॥६॥

सुमति रगापति कह परमान ॥

सिंह नरेश सकल रस जान ॥७॥

सखी—(अवलोक्य) अञ्ज ! अयो बड़हई<sup>५९</sup> देवस्स रहो हस्तरहीणो खगवई  
दीसदि । [आर्य ! अतो वद्धति देवस्य रथः । ईश्वरहीनः खगपति  
दृश्यते ।]

नारदः—स गु रविमणी-सहितो द्वारवती सम्प्राप्तः । संव्रति बलदेवस्य संग्राम-  
मञ्चलोक्य । (कञ्चित् विस्मयिता जरासन्ध्यादयः शिशुपाल-सहितः  
पलायिताः । किञ्चिद् दूरे स्थित्वा हृतदार-सन्निभं कोष्ठुच्यमानं  
चैत्यराजमावसास्यन्ति । बलदेवस्य तूर्पदिशोर्ध्वः प्रहृष्टः स्वी पुरीं

दुनु सखी—हाय धिक् ! हाय धिक् ! आब नहि रचताह ।

नारद—जर जनु करी । देखू, देखू—

भइए पदाति = पददल भय के । खइग = तरवारि । कुमार = स्वामी ॥५॥

यदुनाथ = कृष्ण ॥६॥

दुनु सखी—(देखि) आर्य ! आब देवक रथ आनु बड़ैत अछि । भगवान् कृष्ण सँ  
हीन गरुड़ देखि पड़ैत छथि ।

नारद—ओ तँ रविमणी सहित द्वारका पहुँचि गेलाह । एखन बलदेवक मुद्ध  
देखू । (किछु काल देखि आनन्दपूर्णक) देखू, देखू बलदेव आदि सँ  
हराओल जरासन्ध-आदि शिशुपाल सहित पड़ावल । किछु दूर पर  
ठाड़ भय स्त्रीहरण भेल अप्पनिक समान अविशोक करैत बैदिराज-



यादवैः सह प्रयाति । ततो भवतीभ्यां सह सवापि तत्र गत्वा बलदेवा-  
दीनां समरवृत्तान्तिः श्रीकृष्ण-रुक्मिणीयोः समीपे वर्णनीयः । तावन्नेके  
निमीह्य भवत्यो तिष्ठेताम् ।

(उभे तानन्दं प्रणम्य तथा चक्रुः । नारद आक्षेपणी-सिद्धिबलात्  
ताभ्यां सह द्वारवत्या उवाचमुपगतः ।)

नारदः—अयि ; उन्मील्य लोचने । एषा द्वारवती । अशोपवने श्रीकृष्ण-  
स्तव सख्या सह तिष्ठति । पर्यामस्तावत् ।

(ततः सर्वे श्रीकृष्णनिकटमागताः)

रुक्मिणी—(मानन्दम्) पिअसहीओ ! कखेहि आगमनवृत्तान्तं समलस अ ।

[प्रियसखी ! कथयतम आगमन-वृत्तान्तं समरस्य च ।]

सखी—(मानन्दम्) अजजरस प्यसादेण पुणोवि पिअसही धिट्ठा । समल-  
वृत्तान्तं वण अऊओ जिवेदहस्तवि । [आर्यस्य प्रसादेन पुनरपि  
प्रियसखी वृष्टा । समरवृत्तान्तं पुनरार्यो निवेदयिष्यति ।]

शिषुपाल के सभ केओ आश्वाप्तन देन छैक । आ बलदेव रणवणक  
आवाजसँ प्रसन्न भेल अपन नगरी यादव सभक संग आइत छथि । तँ  
अहाँ दुनूक संग हमहुँ ओतय जाय बलदेव-आदिक मुडक समाचार  
श्रीकृष्ण ओ रुक्मिणीक समीप मे वर्णन करथ । तावत् आँखि  
मूनि अहाँ दुनू रहू ।

(दुनू आनन्दपूर्वक प्रणाम कर सहिना कथलनि । नारद आक्षेपणी-  
सिद्धिक अलें हुनका दुनूक संग द्वारकाक फुलवाड़ी मे पहुँचि भेलाह ।)

नारद—हए ! आँखि खोलह । ई द्वारवती धिक । एहि फुलवाड़ी मे  
श्रीकृष्ण सोहर सखीक संग छथि । देखियतु तावत् ।

(तखन सभ श्रीकृष्णक निकट पहुँचल ।)

रुक्मिणी—(आनन्दपूर्वक) हए दुनू प्रियसखी ! कहह अयबाक ओ मुडक  
समाचार ।

दुनू सखी—(आनन्दपूर्वक) आर्यक कृपा सँ पुनः प्रियसखीकेँ देखलहुँ । मुडक  
समाचार तँ आर्य मुनओताह ।

(रुक्मिणी नारदं प्रणमति ।)

नारदः—भगवन् ! श्रीकृष्ण ! जितं बलदेवेन \*सर्वोन्नतवत्, अन्यैरपि  
\*तावकीः ।

श्रीकृष्णः—देवर्षे ! विशेषेणाऽऽवेदय ।

नारदः—(गीतेन वर्णयति)--

[गीतसं—५४]

—आ रे ! ध्रुव ।

श्रीबलदेव जगसम्भ \*जीतल, दन्तवदन अकहरे ।  
विषयु नवेपने \*जीति पड़ाओल, चेदिनृपतिवर धुरे ॥  
बलदेवे रत जितल धिवूरय, निवृत्त शयु कालिङ्गा ।  
कृतवर्माजी सुनीयहि जीतल, कङ्क जितल नृप अङ्गा ॥  
विश्वके सत्यक जीतल रिपुबल, बहुत कदल रन काजा ।  
पुत्र पुशलायुष जीत भूमायुर, भारल बङ्गक राजा ॥  
बहुत मतङ्ग वुरङ्ग \*कवगहि रङ्गभूमि भेल भीमा ।  
अगनित धीर सरीर खसल जत, कोने कहव तसु सीमा ।

(रुक्मिणी नारदकेँ प्रणाम करैत छथि ।)

नारद—भगवान् श्रीकृष्ण ! बलदेव सकल जनसेना केँ जितलनि ओ अहाँक  
आनो महारथीलोकनि विजयी भेलाह ।

श्रीकृष्ण—देवर्षि ! विशेषरूपेँ कहू ।

नारद—(गीतक द्वारा वर्णन करैत छथि)--

गीतसं—५४

दन्तवदन अकहरे = दन्तवध नामक दैत्यकेँ यादव अकूर जितल ।  
विषयु = एहि नामक यादव । नवेपने = ताकि केँ । चेदिनृपतिवर = शिषु-  
पालकेँ । पड़ाओल = बँलाओल । धिवूरय = एहि नामक कालिङ्गक (खड़ी-  
नाक) राजाकेँ । निवृत्त = घेरल । नृप अङ्गा = अङ्गदेशक राजाकेँ ।

५० - \* - ख । ५१ - \* - क । ५२ - जगसम्भ - क । ५३ - विषयु नवे-  
पने - ख । ५४ - अङ्गे अति - ख ।



समरभूमिं वे तेजि सङ्घालः राखलः<sup>१०</sup> संप्लु पराने ।

यादवगतं सभ अक्षत आएल, सुमति रमापति माने ॥

श्रीकृष्णः—सम्यग्भूतम् । आर्ये ! किमाश्चर्यम् ? मुने ! त्वयापि भद्रमालोकितं  
वर्णितं च ।

(ततः प्रविशति यादवः सह बलदेवः)

बलदेवः—श्रीकृष्ण ! सम्प्रति कथं विश्रम्भते ? किन्तु स्वभवनं प्रविश्य द्रुपदेन  
परिणयो दिव्यः ।

(श्रीकृष्णः बलदेवं प्रणम्य समादिलब्धं च अन्येषामपि यथोचित-  
तत्वाचरति ।)

श्रीकृष्णः—आर्ये ! दिव्यं क्षेमेण भवत्सहाया यादवा अक्षताः पुत्ररायातास्तो  
च समरपरिष्ठाताः सन्ति । ततो मनाम् विश्रम्भताम् ।

चित्रके सत्यक = चित्रकके सत्यक नामक यादव । मुसलायुध = बलदेव । मत्स्य-  
गुरुङ्ग कथम्बहि = हाथी ओ घोडाक कटल सूडो सभ सौ । रङ्गभूमि = युद्ध-  
क्षेत्र । भीमा = भयानक । अक्षत = कुशलपूर्वक ॥

श्रीकृष्ण—ठीके भेल । आर्ये ! (रुमिणी ! ) की आश्चर्य ? मुनिवर ! अहूँ नीक  
अर्का देवलहुँ ओ वर्णित कमलहुँ ।

(तखन यादवसभक संग बलदेव प्रवेश करैत छथि ।)

बलदेव—श्रीकृष्ण ! आव एखन कियेक सकल छी ? आव तँ अपन घर प्रवेश  
कथ ओझे विवाह करू ।

(श्रीकृष्ण बलदेवकेँ प्रणाम ओ आलिङ्गन कथ आनो सभक  
यथोचित सत्कार करैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—आर्ये ! भाग्यवशात् कुशल पूर्वाक अहाँक सहायक यादवलोकनि सुर-  
क्षित कर बयलाह, ओसभ युद्धक कारण बाकल छथि । अतः कतेक  
विधाम करैत जाउ ।

बलदेवः—(उपविश्य) देवर्षे ! त्वमग्रे गत्वा नृपायोऽग्रेसेनाय ताताय च निवेदय ।  
देववयादयश्चाऽऽम्भ्य विनिवेद्याः कुर्वन्तु सकल-माङ्गलिकमिति ।

नारदः—(पूरं प्रविश्य तत्र बलीकेन सहर्षमावेदयति) —

आयातो हरिरच्युतः स्वनगरं<sup>११</sup> रामादिभिर्बन्धुभ्यो-

रुमिण्या च समन्वितो रिपुषलं जित्वा सहर्षं ततः ।

कुर्वन्तु प्रतिमन्दिरं यदुकुले नार्यः पर मङ्गलं  
वादिष ध्वनि गीत-नाच-नृत्यं गृह्णन्तु भूषावलीः<sup>१२</sup> ॥४०॥

(सर्वीः समाकर्ण्य सानन्द तत्राऽऽवर्तते । उग्रसेनः च तत्रा  
सानन्दं सम्पूज्य तेनाऽनुज्ञातः श्रीकृष्णस्य पुरी गत्वा यथोचित-  
माभाष्य च पुरं प्रवेशयति । तथा पुरस्थितो नृपयति विहागरामे )

[गीतसं०—५५]

सजनी ! परम सुमङ्गल कज ।

रुमिनि देवि सहित पुतु आएल निजमन्दिर यदुराज<sup>१३</sup> ॥४०॥

बलदेव—(वेष्टि) देवर्षि ! अहाँ आगु जाय राजा उग्रसेनकेँ ओ पिताजीकेँ कहि  
अभियन्तु । देवकी-आदि मायलोकनिकेँ सेहो कहवति जे सभ मंगल-  
काज करथ ।

नारद—(नगर प्रवेश कथ, अंत्य बलीकद्वारा सहर्षं कहैत छथि) —

बलराम-आदि बन्धुक ओ रुमिणीक संग श्रीकृष्ण शत्रुसेना  
केँ जीति सहर्ष अपन नगर आवि गेलाह । अतएव गारीलोकनि  
यदुकुलक प्रत्येक घर मे आवाक शब्द, गीत, नाच आदि सँ युक्त  
महान् मङ्गल करैत जखु ओ महनायक बहिरथ ॥४०॥

(सभ बयो सूर्ति आनन्द सँ तेना करैत छथि । उग्रसेन सूर्ति  
आनन्द पूर्वक हुनक पूजा कथ हुनका सँ आशा पाबि श्रीकृष्णक  
आगु जाय यथोचित कहि नगर प्रवेश करबैत छथि । तखन नगरक  
स्त्रीयश भवैत छथि विहागराम मे) —

[गीतसं०—५६]

निजमन्दिर = अपन घर । यदुराज = कृष्ण । मलयजरस = श्रीकृष्णक



मलयज रस लय भवन विलेपिञ्च, साजिञ्च वन्दनेवार ।  
 ००अमुपम ऐपन रचिञ्च मलोरम, घरेँ घरेँ दीञ्च हंकार ।  
 एला-बीज लवंग सुवासित, लविर सहित घनसार ।  
 जाशीफल दय विविध भति कय करिञ्च तमोर ००संभार ॥  
 कञ्चन-कलस सलिलेँ परिपुरिञ्च, वडए सुगन्धि अनेक ।  
 तसु मुख धरिञ्च रसालक किसलय, हरण करिञ्च अतिरेक ॥  
 मङ्गल समय उचित सदे सखि मिलि, गाविञ्च मुललित राग ०० ।  
 विहि पत्सन भेल, वृष्टि दरसन देल, बाइल मदकुल भाग ।  
 देवकि रोहिनि सहित कलस कर, आनन्द यादव-गारि ।  
 गाव रमापति, अति प्रगुदित मनि, अस्मिमत पुरय मुरारि ॥

नारदः—(प्रविश्य) भगवान् ! वसुदेव ! भगवति देवकि ! रोहिणि ! शुभलग्न-  
 प्रसिद्धासति । तस्मात् परिणयानु श्रीकृष्णो रुक्मिणीम् ।

ततो नारदवाक्यानुसारेण श्रीकृष्णो रुक्मिणीं परिणयति ।  
 पुनरपि ता गायन्ति) :-

संसल धामन सौ । वन्दनेवार = मेहराव । एलाबीज = इलायचीक  
 बीजा । सुवासित = सुगन्धित । लविर = लवण कय । घनसार =  
 कपूर । जाशीफल = जायफल । तमोर संभार = पातक व्यवस्था ।  
 कञ्चन-कलस = सोनाक घट । सलिले = जल सौ । तसु = ओहि बेलक  
 मुह पद । रसालक किसलय = आमक फलव । अतिरेक = अतिशय ।  
 विहि = विधाना । रोहिनि = बलदेवक माय । कलस कर = हाथ से  
 भरल बेल ।

नारद—(प्रवेश कय) भगवान् वासुदेव ! भगवती देवकी ! रोहिणी ! शुभ  
 लग्न बितल जाय रहल अछि । तेँ श्रीकृष्ण रुक्मिणी सौ विवाह करवा  
 (सखन नारदक वचनक अनुसार श्रीकृष्ण रुक्मिणीसँ विवाह  
 करैत छथि । पुनः स्त्रीगण गीत गवैत छथि) —

[ गीत सं० - ५६ ]

अति सुविधस भेल आजे ।  
 रुकुमिनि-पाणि गह्वि वृक्षराजे ॥  
 जनम सफल मोहि भेला ।  
 विहि भेल समुख नयन मुख लेला ॥  
 दुहुक वदन सानन्दा ।  
 जनि केरव मिल सारव चन्दा ॥  
 मने होअ गिरिञ्च-भवानी ।  
 कीदहुँ कमला-सारङ्गपानी ॥  
 दुहुक विलोच छाजे ।  
 मन अभिलाष वदन-रुचि छाजे ।  
 सुमति रमापति भाजे ।  
 सिंह नरेन्द महीपति जाने ॥

(ततो वैवाहिक कार्य परिसमाप्य श्रीकृष्णो रुक्मिणीया सह समुपवि-  
 शति ।)

नारद—(द्वयोश्चताम्बां शुभाशीर्वाद दैत छथि । तत्र श्लोक) —

[ गीत सं० - ५६ ]

रुकुमिनि-पाणि = रुक्मिणीक हाथ । विहि = विधाता । समुख = अनुकूल ।  
 केरव = कुमुदिनीक फूल । सारव = शरद ऋतुक । मने होअ  
 गिरिञ्च-भवानी = मन मे लगीछ जेना शंकर ओ पार्वती रहथि ।  
 कमला सारङ्गपानी = लक्ष्मी ओ विष्णु । विलोचन = आँखि मे ।  
 वदन-रुचि = मुहक चमक ॥

(सखन विवाह विधि समाप्त कय श्रीकृष्ण रुक्मिणीक संग  
 बैसैत छथि ।)

नारद—(द्वि ओ अक्षत सौ शुभाशीर्वाद दैत छथि । ताहि मे श्लोक) —  
 जेना गिरिजाक संग श्रीकृष्ण, लक्ष्मीक संग विष्णु ओ शचीक संग



श्रीशङ्करो निरिजया रमया मुकुन्दा

शब्दा यथा मुरपतिः सहितो विभाति ।

साक्षं तथा स्वयनया विहराऽन भूमौ

भुक्त्वा चिरादुरखिलाऽभिमतोऽस्तु<sup>१२</sup> सिद्धिः ॥४१॥

(ततो देवक्याद्यो नीराजयन्ति । तत्र गीतं गौरी-मालव-विहाग-  
रागेण) —

[गीतसं०—५७]

साजनि ! धिरविअ मञ्जुल साखे ।

ककुमिनि देवि सहित मदनमन, हरषि चामविअ आजे ॥४२॥

तण्डुल दूवि<sup>१३</sup> हरिष कदलीफल, मलयज पञ्च विनाले ।

विचकिल<sup>१४</sup> कुन्द, अहन अरविन्दहि, माधिय अनुपम माले ।

फल इधि कुसुम निकरै<sup>१५</sup> हरिपूरुष, सुललित डल्लक हाथे ।

चिवध जुगाशिष दइए चामविअ, सब मिलि माधव-माथे ॥

गुग्गुल अगर विसाल सालरस आनिअ घूष समीपे ।

सानन्द मानस भए पुनु वेज्जोछिअ, तमु तिर मनियव दीपे ॥

इन्दु शोभित होइत छवि सहिना अहाँ हिनका संग एहि पृथ्वी पर  
दीर्घायु भय विहार करू । अहाँक सभ अधीष्टक सिद्धि हो ॥४१॥

(नखन देवकी आदि भारती करैत छथि । ताहि ठाम गीत गौरी-  
मालवविहाग रागक द्वारा) -

[गीतसं० - ५७]

चामविअ = चामाओन कराउ । तण्डुल = अण्डुल । हरिष = सुन्दर ।

कदली = केरा । मलयज-पञ्च = श्रीराण्ड घँसल । विचकिल = बेली-

फल । अहन अरविन्दहि = लाल कमल सौ । अनुपम = जकरे

उपमा नहि हो, अपूर्ण । निकरै = ससह सौ । सुललित डल्लक =

दय करताल ताल बुझि<sup>१६</sup> हरिगुन, करिअ मनोहर माने ।

सिंह नरेन्द्र-महीपति ब्रह्मवि, सुमति रमावति भाने ॥

(अथाऽपि<sup>१७</sup> "हे सखि ! कहव कओने विशेषि" इति गीतम् सं०-५८  
उपयोगीति ।)

(तत उत्थाप श्रीकृष्णस्तथा सह कौतुकागारं प्रयाति । तत्र गीतम्) —

[गीतसं० - ५८]

कौतुक-भवन चलल बनमाली ।

सिन्दुर घार देख तमु आली ॥

करपञ्चज गहि राजकुमारी ।

लघु लघु युगल चरन मञ्जवारी ॥

बाँके<sup>१८</sup> विलोचने बहूसि निहारी ।

सबहुक मानस हरषि मुरारी ॥

सामर तनु आनन सानन्दा ।

जलद उपर समुचित जनि चन्दा ॥

सुन्दर डाला । माधव-माथे = कृष्णक माथ पर । साल-रस = सररका सत्त्व ।  
सानन्द मानस = आनन्दित मन । करताल = धररी ।

(एह ठाम "हे सखि ! कहव ...." गीतसं० ५८ उपयोगी अछि ।)

(तखन ऊठि श्रीकृष्ण रविमणीक हाँन कोबरा घर जाइत छथि । ताहि-  
ठाम गीत) -

[गीतसं० - ५९]

बनमाली = कृष्ण । आली = सखी । करपञ्चज = करकमल । लघु

लघु युगल चरन = छोट डेगे<sup>१९</sup> दुनू पदर बढवैत छथि । बाँके = तिरछी ।

विलोचने = नजरि सौ । मानस = मनके<sup>२०</sup> । सामर तनु = श्यामल देह ।

आनन = मुह । जलद = रोष । समुचित = उगल । अनुपम = अपूर्ण । मन-

५४ - बुझि ख । ५६ - ०००० क (एहि वांतीक अभाव) ।

५७ - बाँके विलोचन - क ।



अनुपम रूप निरखि हरि<sup>६६</sup> देहा ।  
ते<sup>६७</sup> जनि<sup>६८</sup> मनसिज शेल विदेहा ॥  
हरिपद प्रनत रमापति भाने ।  
गिरि नरेन्द्र महीपति जाने ॥

(ततः कौतुकमारं प्रविश्य रुक्मिण्या सहोपविशति । तत्र गीतं पहरिष्या-  
मालवरानि -)

[गीतसं०---५६]

अपदव कौतुक देशिअ आजे ।  
अभिनव नागर रमनि समाजे ॥  
जतनहु सगुहा वदन नहि राखे ।  
उकुतिहि बुझिअ परम अभिलाषे ॥  
अनुपम उपचित दुहुक सिनेहे ।  
थिर भए दामिनि मिलु जनि मेहे ॥  
किदहुँ चकोर रमनि मिलु चन्दा ।  
कीदहुँ अलि कमलनि - मकरन्दा ॥  
कीदहुँ रति पुनु पाओल सङ्गे ।  
विधिवस तनु घरि मिलल अनङ्गे ॥

सिज = कामदेव । विदेहा = देहहीन ॥

(तत्पश्चात् कोशरा घर प्रदेश कय रुक्मिणीक संग बैसीत छथि । ततय  
गीत पढ़िष्या-मालव राग मे) —

[गीतसं० - ५७]

कौतुक - छीला । अभिनव - नवीन चतुर नायक । रमनि - समाजे  
- चन्दरीक संग छथि । जतनहु - यस्तो कयला पर । समुख -  
सोझै । उकुतिहि - बचने सँ । उपचित - बकुल । दामिनि -  
विजुरी । मेहे - मेदक संग । किदहुँ - गरिबक । चकोर रमनि -  
चकोर पक्षीछपी सुन्दरी । अलि - भौंरा । कमलनि-मकरन्दा -

मने गुनि सुमति रमापति गावे ।  
पुनव पुने<sup>६९</sup> दहु समुचित पावे ॥  
(सखी सप्रश्रय नायकः -)

[गीतसं०---६०]

गांधव ! सुनिअ निवेशत बानी ।  
सुमुखि मिलल तोहि गुनमय जानी ॥  
ते<sup>७०</sup> परि पेम घरव सखि ठामे ।  
दिने दिने छीअ अधिक अभिरामे ॥  
यतने सेटाए उपल-पट - रेहे ।  
न छुट जनम घरि सुजन सिनेहे ॥  
जइअओ घरव पुनु पुनु दव नीरे ।  
अधिरल परिमल देखि पटीरे ॥  
तेहि भुजग बिग मलय समीरे ।  
गुन गहि सोतल करखि सरीरे ॥  
हरतिर वसत जनक जशु सिन्धु ।  
सेहओ सुधाकर करव - यन्धु<sup>७१</sup> ॥

कमलनीक पराग सँ । रति - कामदेवक स्त्री । विधिवस - संयोग  
सँ । तनु - देह । अनङ्गे - कामदेव । पुनव पुने - पूर्वक पुण्य सँ ॥

(दत सखी स्नेहपूर्वक गवैत छथि) -

[गीतसं० - ६०]

ते<sup>७०</sup> परि = ततेक । पेम = प्रेम । सखि ठामे = सखी पर । अधिरामे  
= सुन्दर । यतने = यत्न कयला पर । उपल-पट-रेहे = बाधरक तल  
पर जे रेखा से । घरव = बैसल जाइछ । नीरे = पानि । अधिरल =  
लगत्तार । परिमल = सुगन्धि । पटीरे = ओखण्ड । भुजग = सापक ।  
मलय समीरे = मलयाचलक दहिनाही बसात । हर सिर = महादेवक

सुरगने मयि सम्पत्ति-लुटि लेल ।  
तइअओ जलधि उछलित नहि भेल ।।  
सुमति रसापति भन परमान ।  
न थिक परसमति चुजन—समान ॥  
(श्रीकृष्णः सलज्जं नारदमवलोकयति ।)

नारदः—एवमेतत् । किन्तु, (श्लोकेन) —

सर्ववंशजा क्षाधिमुखी विदुषी सखी ते  
भूचालवर्त्मपहाय हरी प्रलीना ।  
प्रेमऽऽकुलेन मनसा परिणीय चेत्यं  
किं वा वशीकरणमस्ति ततोऽधिकं च ॥४९॥

तेन सर्वथा त्वत्सख्या स्वपूर्णं देवः क्रीडो वासुदेवः, विशेषतस्तु  
सम्प्रति भवत्योरमुनय-वचनाऽमृतेन ।

सखी<sup>१५</sup>—अज ! जइ देवो सीकरेदि । [आय । यदि देवः स्वीकरोति ।]

संय पर । जनक वसु सिन्धु = जनिक पिता समुद्र छयि । सुधाकर  
= चन्द्रमा । करव-वधु = कुमुदफूलक मित्र । सुरगने = देवता सभ ।  
जलधि = समुद्र । उछलित नहि = प्रवादाक उल्लंघन नहि कयल ।  
परसमति = स्पर्शमणि ॥

(श्रीकृष्ण लज्जामुक्त भेल, नारद के देखीत छयि ।)

नारद—ई एहिना छैक । मुदा, (श्लोकक द्वारा) —

उत्तम वंश मे जनमलि अहाँ लोकनिक ई बुधियारि सखी सभ  
राजके छोटि श्रीकृष्णमे तम्मय भय गेलीहि । प्रेमसँ ओतप्रोत मने  
एहिप्रकार विवाह कय हुनक ई वशीकरणे की, ओहू सँ अधिक  
थिक ॥४९॥

ते सभ तरहें अहाँ, सखी अपन गुण सँ कृष्णके मोल लय  
लेलनि, विशेष कय अहाँ हुनक धिनय-वचनकयी अमृत सँ ।

दुनू सखी—आय ! जँ देव स्वीकार करयि ।

श्रीकृष्णः—यथाह देवपि नारदः ।

नारदः<sup>१६</sup>—सम्प्रति सम्पत्ते मया निर्जन-देशो<sup>१७</sup> जयाचरणात् ।

(श्रीकृष्ण उत्थाय तममुनेन निष्क्रान्तः । सखिभ्योऽपि निष्क्रान्ताः ।)

रविमणी—(सोहै रम्) सही ! अम्हानं भाइयो विमोक्षण कइ भविरसदि ?  
मए उण एदेण महसवेण विगुमरिद । [सखी ! अस्माकं भ्रातृ  
विमोक्षण कइ भविष्यति ? मया पुनरेतेन महोत्सवेन विस्मृतम् ॥  
सखी—सहि ! अज्ज रअणीए तए माणो गहीदव्वो । तवो उजेव तस्स मोक्षो  
भक्ति भविरसदि । [सहि ! अह रज्ज्यां रचया माणो प्रहीतव्यः । ततो-  
उद्यं तस्य मोक्षो भविष्यति ।]

रविमणी—तत्त्व वि को उण उवाओ ? [तथापि कः पुनरुपायः ?]

(उभे सर्वे शिक्षयतः)

श्रीकृष्णः—(प्रविश्य) कथमन्तिरेणैव सोद्वेगा प्रिया ? (पुरः शिवत्वा) प्रिये ।  
सम्प्रति सर्वे निर्मिताः । ततः किमिति नाऽऽभाषयसि माम् ?

श्रीकृष्ण—ये कहलनि देवपि नारद सएह ।

नारद—आव एखन हम निर्जन स्थान मे जय करवा लेल जाइत छी ।

(श्रीकृष्ण ऊठि हुनका अरियातबाक हेतु बहार भेलाह । यादवरखी  
सभ सेहो गेलीहि ।)

रविमणी—(उद्विग्न होइत) सखी ! अप्पनालोकनिक भाइक वस्थन-मुक्ति कोना  
होयत ? ई तँ हम एहि महोत्सव सँ विसरि गेलि छलहुँ ।

दुनू सखी—सखी आइ गति अहाँ मान करव । ताहि सँ आइये हुनक  
(रवमीक) अन्धन सँ छटकारा शतदम होयत ।

रविमणी—आइये कोन उपाय अछि ?

(दुनू सखी सभ टा सिलावैत छयि ।)

श्रीकृष्ण—(प्रवेश कय) कियेक धोइये कालमे प्रिया उद्विग्न भय गेलीहि ? (आगू  
मे ठाढ़ भय) प्रिये ! सम्प्रति सभ बहार गेल । तखन कियेक एना  
हमरा सँ नहि बजीत छी ?



हविषणी—(विमुक्षीभूय मुखमयमुग्ध्य तिष्ठति ।)

श्रीकृष्ण—(करे प्रह्रीभुमिच्छति ।)

हविषणी—(सकोपं करमाकुण्ठ्य दीर्घं निःश्वास्य मुखमाच्छाद्य रोदिति ।)

श्रीकृष्ण—(पुनरगतः स्थित्वा बद्धाञ्जलिः) प्रिये ! प्रसीद मानिनि ! सम्प्रति प्रभातक्षेपेयं रजनी लक्ष्मते । तथाहि (गीतेन)—

[गीतसं०—६१]

गिरिवर-लीन मलीन निराकर, अल्प गत नहि भासे ।

मुदित कमलधनि किं नहि तुभ्य छनि, नयन सरोज विकासे ॥१॥

ओ मे मानिनि ! अध्रुवा

(अत्रार्थे श्लोकः)—

अस्ताचलं याति क्षणी गतच्छवि-

लंसति नवाऽपतराश्च तारकाः ।

सरोज-राजी प्रविभाति सर्वतः

तथापि ते नेत्र-सरोज-मुद्रणम् ॥२॥

हविषणी—(विमुक्ष भय मुँह पर घोष तानि रद्वेत छवि ।)

श्रीकृष्ण—(हाथ पकड्य चाहैत छवि ।)

हविषणी - (कोप सहित हाथ धीचि दीर्घं निःश्वास्त लब्ध मुँह ज्ञीपि कनैत छवि ।)

श्रीकृष्ण - (पुनः आपूमे ठाढ़ भय कल जोड़ि) प्रिये ! प्रसन्न होज मानिनि । सम्प्रति मोहकवा राति जकां बुझाइछ । जेना कि (गीतक द्वारा) -

[गीत सं०—६१]

गिरिवर लीन = अस्ताचल पर्वत मे डूबल जाइत । मलीन निराकर =

प्रकाशहीन अन्धमा । अल = थोड़खो । नरात = तरेगन । मुदित = प्रसन्न ।

नयन-सरोज = आँखि रुपी कमल । विकासे = खूबैत अछि ॥१॥

(एहि अर्थमे श्लोक) - अन्धमा श्रीहीन भय अस्ताचल पर जाइत छवि ओ तरेगन कनिवौ नहि ओभित होइछ । कमलक समूह सनठाम शोभित भय रहल अछि, तपो अहाँक आँखि रुपी कमल मुनयल अछि ॥२॥

गुरपति-दिस अनुराग देखिअ धनि तइअओ हे तोहि अनुरागे ।

तुअ मानस परसन नहि सुन्दरि, अम्बर परसन लागे ॥१॥

(अत्रार्थे श्लोकः)—

अनुरागोऽभवेत् प्राच्यो नाऽनुरागस्तथैव प्रिये ।

प्रसन्नमम्बरं वीक्ष्य न प्रसीदति ते मनः ॥१॥

तुअ मुख नीन विचारि कलावति । पिक पञ्चम कर नादे ।

पिञ्जर कीर धीर मधु भाषय, तन्न होअ परम विधादे ॥२॥

(अत्रार्थे श्लोकः)—

मीनं सम्यज<sup>१०</sup> कञ्जाक्षि ! मानं मुञ्च न<sup>११</sup> मुञ्च वा ।

पिकाः शुक्रश्च तुथोणि ! मूकास्तच्छत्रु साम्प्रतम् ॥२॥

इन्दु मृणाल अमिअ सरसोइहे, तुअ तन<sup>१२</sup> अय निरमाने ।

मानस कुलिस बलिश बिहि विरचल, तहिन होअ अनुमाने ॥३॥

गुरपति दिश = पूव दिशा । अनुराग = लाली । अनुरागे = प्रेमा मानस

= मन । परसन = प्रसन्न । अम्बर = आकाश ॥१॥

(एहि अर्थमे श्लोक) - पूव दिशामे अनुराग (लाली) भय गेल, मुदा, हे प्रिये !

अहाँक हृदयमे अनुराग (स्नेह) नहि भेल । प्रसन्न (रमणीय) आकाशके देखि अहाँक मन प्रसन्न नहि होइछ ॥१॥

मीन = चूपा । पिक = कोइली । पञ्चम = पञ्चम स्वर मे । नादे =

आवाज । पिञ्जर कीर = पिञ्जरा मे सुग्गा । धीर मधु भाषय = स्थिर

हो कोमल स्वरे वजीछ । विधादे = तकलीफ ॥२॥

(एहि अर्थमे श्लोक) -

हे कमल समक आँखिवाली ! अहाँ मानके छोड़, वा नहि छोड़, मुदा,

चूपी छोड़ि दिव । हे सुन्दर जाँघवाली ! अहाँक बजला पर एतव कोइली

ओ सुग्गा चूपा भय जाओ ॥३॥

(अन्वर्थे पद्योक्तः) —

बन्धुणाऽऽस्य विधाव प्रथममथमृणालद्वयेनैव बाहू  
नेत्रे रस्ताऽऽम्बुजाभ्यामधर-विरचना बन्धुणीवप्रसूनेः ।  
सृष्ट्वा पीयूषसारे वीचनमिह विधिमनिरां किस्त्वकस्माद्  
बन्धुणाऽकारि कस्माद् कलिसमिव परं न कमेतन्न जाने ॥४६॥

विमरिज दोष, रोस सवे दूरि कए, वचन अमिज ५६ दाने ।  
निसि अवतान मान नहि पल्लिअ, सुगति रमापति भाने ॥४६॥  
अपि च,

[गीतसं०—६२]

गुंअ मुख अवतत देखि मानिनि ।  
पङ्कज विकस विशेपि ॥  
हेरि विलोचन आध, मानिनि ।  
कहिअ हुमर अपराध ॥

इन्दु = चन्द्रमा । मृणाल = कमलक नाल । अमिज = अमृत । सरसीक्षु  
= कमल, एहि सख सौं । गुंअ तन = अर्हाक देखिक । निरमाने = रचना ।  
मानस = मन । कुलिस वलिस = वज्र ओ यल्ली सनक । विहि =  
विधाता । सहिन = सहित ॥४६॥

(एहि अर्थ मे पद्योक्तः) -

विधाता पहिने चन्द्रमा सौं अर्हाक गुंहे मकि, दूइ कमलनाल सौं बाहि,  
दूइ लाल कमल सौं आखि, माधुरीक फूल सौं ठौर ओ अमृतक रस सौं  
वचनक सृष्टि कवलनि, मुदा, एकाएक होना बज्रसौं वल्ली जकां देइ ई  
अर्हाक मन के वनओलनि से नहि जानि ॥४६॥

दोस = दोष । रोस = रोष, कोष । अमिज = अमृत । निसि अवतान =  
शत्रुक अन्त मे ॥४६॥

आओरो -

[गीतसं०—६२]

अवनत = भुक्कल । पङ्कज = कमल । विकस विशेपि = विशेष रूपे

६५ - सृष्टा - ख । ६६ - किन्दु, कस्माद् - ख । १०० - रज - क । १ - सख  
- क ।

न तेजिअ विधुमुखि । नोर, मानिनि ।  
आकुल नखन चकोर ॥  
आनन इन्दु समान, मानिनि ।  
कञ्जले होअ मलान ॥  
परिहरि दीघ निरास, मानिनि ।  
न रहए अधरक भास ॥  
सुमति रमापति भान, मानिनि ।  
मिथिला - पति रस जान ॥

रामिणी—(अथ निवार्थ कटाक्षोपायलोकयति ।)

श्रीकृष्णः—(सहर्षम्) प्रिये ! त्वयि वादो मम स्नेहोऽस्ति तदव्याकर्णय ।  
(पुन गीतेन) :—

[गीतसं०—६३]

तोहे हम जहिन सिनेह, प्रेयसि ! ॥ध्रु०॥  
(इत्यादि) ।

फुलाइत अछि । हेरि = ताकि । विलोचन आध = आधा दृष्टि सौं ।  
तेजिअ = छोड़ । विधुमुखि = चन्द्रमुखी । नयन-चकोर = हमर आखि,  
रूपी चकोर पक्षी । आनन = गुंहे । इन्दु = चन्द्रमाक । कञ्जले =  
काजर सौं । परिहरि = छोड़ि । दीघ = पंथा । अधरक भास = ठोरक  
शोषा ॥

रामिणी—(नोर रोकि कटाक्ष सौं देखत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(सहर्षम्) प्रिये ! अहाँ पर हजरा जेहन स्नेह अछि सेहो सुत । (पुनः  
गीतसं०) :—

[गीतसं०—६३]

तोहे हम अर्हाके हम जेहन स्नेह करैत छी । प्रेयसि ! प्रिये !

२ - इत्यादि - क ख (सुहृ गोपी मे गीत अगुन अछि ।)



रक्षिणी—(सानन्दं विहसमाऽवलोक्य च सखीं सम्बोधय वदति) सखीशो !  
विष्णावेहि अज्जउत्तं, जइ सक्कं एव' तदो अम्हाणं भादुणो विमो-  
क 'ण' राणि जेव करेहु । [सखी ! विज्ञापयतम् आर्यपुत्रं, यदि  
सम्पन्नं ततोऽस्माकं भ्रातु विमोक्षणमिदानीमेव करोतु ।]

सखी—(श्रीकृष्णं निवेदयतः ।)

श्रीकृष्णः—कथमेतावत्येष कार्यं एवमावाप्तः ?

सखी—जइउत्तं गरुओ पुक्कावरहो तदो अण्हो\*सङ्खि पिअसहीए ह्विअं ।  
[पतोऽस्म गुरुका पूर्वपराश्रः ततोऽप्यथाशङ्खि प्रियसखा हृदयम् ।]

श्रीकृष्णः—तहि युक्तमेव । कः कोऽत्र भो !

किङ्कुरः (प्रविश्य, प्रणम्य च) एकोहि । आणवेदू सामी । [एवोऽस्मि ।  
आज्ञापयतु स्वामी ।]

श्रीकृष्णः—विमोचय इमंश्चपदेन विरूपं विधाय च रामानीयतां रुक्मी ।

(किङ्कुरो निष्क्रम्य तथा कृत्वा तेन सहावातः ।)

(ततः प्रविशति बलदेव ।)

रक्षिणी - (आनन्दपूर्वकं हंसि ओ देखि सखीके सम्बोधित कय वज्रत छधि)  
हुहु सखी ! कहियनु आर्यपुत्र के, न ई सत्य ते हमरा लोकनि क  
भायके एखन बन्धनमुक्त करयु ।

हुनु सखी - (श्रीकृष्णके कहैत छधि ।)

श्रीकृष्ण - को एतवे साजक विषय मे एहन आवास भेल अछि ?

हुनु सखी - जे कि हुनक पैर पुर्वक अपराध छनि ते प्रियसखी हृदय आन-  
तरहए शंका मे छल ।

श्रीकृष्ण - तखन ते ठीके भेल । कयो एतय अछि ?

नोकर—(प्रवेश कय ओ प्रणाम कय) इवेह छी, अशा बैल जाओ सरकार ।

श्रीकृष्ण - रुक्मीके खोलि ओ दाढ़ी काटि विरूप बनाय लावहु ।

(नोकर बाहर जाय, सहिना कय रुक्मीक संग अगैत अछि ।)

(सखन बलदेव प्रवेश करैत छधि ।)

बलदेवः—अतः परमसी न विलम्बणीयः ।

किङ्कुरः—(तथा करोति ।)

बलदेवः—(रक्षिणी प्रति) कल्याण ! भ्रातु वैरूप्यहेतोस्त्वया मृत्यु न कार्या ।  
पतोऽस्माकं क्षत्रियाणां विग्रहे सति सर्वं भवत्येव, किन्तु \*यद्याहोऽ-  
प्ययं तथाऽनुग्रहादेव श्रीकृष्णेन रक्षितो मोचितश्च ।

(रक्षिणी सानन्दं सखीमवलोकयति ।)

सुदक्षिणा—जहा अउज्जेश आणत्तं तहा करिरसदि पिअसही । [यथा आर्येण  
आज्ञप्तं तथा करिष्यति प्रियसखी ।]

नारदः—(प्रविश्य, रक्षिणमवलोक्य परिहासार्थकं विधाय) गच्छतु भवान् ।

(इति तैरनुज्ञातो रुक्मी निष्क्रान्तः, प्रतिज्ञावचनं संस्मृत्य लज्जया  
भोजकट-नगरे निवासमकरोत् ।)

नारदः—अभवन् ! अनुजानीहि मां ब्रह्मसदन-गमनाय । किं वा भूयस्तत्र प्रियं  
मया सम्पादनीयम् ?

बलदेव - एहे सँ बैलो पिरुन हिनका नहि बनावह ।

(नोकर सहिना करैल ।)

बलदेव—(रक्षिणीक प्रति) भाग्यजालिनि ! आइक विरूप हयवाक हेतु अहाँ  
कोध जनु करी । कियेक नँ हमरा लोकनि जे क्षत्रिय छी, तनिकां युद्ध  
भेला पर सभ किछु भय जाइछ । किन्तु मृत्यु-दण्डभागियो ई अहाँक  
कूपे सँ श्रीकृष्णक द्वारा वचाओल गेलाह ओ छोड़ल गेलाह ।

(रक्षिणी आनन्दपूर्वक सखीके बैसैत छधि ।)

सुदक्षिणा—जेना आर्य आज्ञा देल अछि तेना करतीह प्रियसखी ।

नारद - (प्रवेश कय, रुक्मीके देखि हँसी मजाक कय) जाउ अहाँ ।

(हुनकालोकनि सँ आज्ञा पावि रुक्मी बाहर गेलाह । अपन  
प्रतिज्ञा वचन स्मरण कय लाजे भोजकट नगर मे निवास कयलनि ।)

नारद - भयवान ! आज्ञा थिय हमरा ब्रह्मलोक जयवा लेल । आओर भी पुनः  
अहाँक प्रिय हम कछु ?



श्रीकृष्णः - देवर्षे ! पूर्णः सर्वे नो मनोरथः ॥ औदभीं पृच्छ ।

नारदः - कथयतु भवती ।

रुक्मिणी - अज्जस्य वसादेण सर्वो नो पिअं संवत्तं, सहवि सम्पदं एदं भोदु । [आर्यस्य प्रसादेन सर्वे नः प्रियं संवृत्तम् । तथापि साम्प्रत-  
मिदं भवतु ।]

(ततः सखीभ्यां सह गायति । सर्वे च गायन्ति तत्र गीतम्) :-

[गीत सं०-६४]

वारिद वारि विमुञ्चथु काले ।  
अवनि रहथु बहु अग्ने विसाले ॥  
परजा पालि धरम अनुकूपे ।  
मुदित रहथु मिथिलापति भुवे ॥  
भारति भगति भावे खिर वासे ।  
बुधजन - मानस कश्चु विलासे ॥

श्रीकृष्ण - देवर्षि ! हमरालोकनिक सभ मनोरथ पूर्ण भव गेल । रुक्मिणीके  
पुछियन्तु ।

नारद - रुक्मिणी ! अहाँ कहू ।

रुक्मिणी - आर्यक कृपासँ हमर सभ प्रियकायं पूर्ण भेल । तैयो एखन ई  
होअओ ।

(तखन दुनू सखीक संग गबैत छथि ओ सभ केओ गबैत छथि ।

साहित्यमक गीत) :-

[गीतसं०-६४]

वारिद = मेघ । वारि = पानि । विमुञ्चथु काले = समय पर  
छोड़थु, बरिसथु । अवनि = पृथ्वी । मुदित = प्रसन्न । भारति =  
सरस्वती । भगति भावे = भक्तिभावना सँ । बुधजन मानस =  
विद्वानक मन मे । विलासे = खेल । तसु = विद्वानक । वारिद -

तसु गुन जानि हरषि तत्काले ।  
वारिद हरथु सवत महिपाले ॥  
नृपति होअ जनु पिशुन - समाजे ।  
सानन्द रहथु सकल द्विजराजे ॥  
सविनय सुमति रमापति मने ।  
रूपक करथु सुजन अनुरागे ॥

श्रीकृष्ण:- देवर्षे ! सम्पत् प्रियया तत्सखीभ्यां च प्रार्थितम् । तस्मादहमपि  
याचे । (श्लोकेन) :-

काले वारिधरो विमुञ्चतु जलं, शश्वैः पूर्णोऽवनि-  
नित्यं चाऽस्तु, महीभूजः पूमुदिता, धर्मोप पान्तु पूजाः ।  
वाग्देवी विप्र्य भक्तितो हृदि सतां भुवाद् विलासोज्ज्वला  
सा भूर् भुवसभा खलैरपचिता, तन्दन्तु विप्राः सदा ॥४॥  
नारदः-(सोल्हासम्) एवमस्तु ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

वरिद्रता । सवत = हर दम । महिपाले = राजा । नृपति = राजा ।  
पिशुन-समाजे = दुर्जनलोकक सम्पर्क मे । द्विजराजे = सद्ब्राह्मण ।  
रूपक = दृश्यकाव्य (रुक्मिणीपरिणय नाटक) मे । सुजन =  
नीजलोक ।

श्रीकृष्ण- देवर्षि ! प्रिया ओ हुनक दुहु सखी यथोचित माऊ कयलनि । ते  
हमहुँ मईत छी । (श्लोकक द्वारा) -

उचित समय पर मेघ जल बरिसओ, पृथ्वी धान्य सँ पुरल रहथु,  
प्रसन्न राजालोकनि धर्मसँ प्रजापालन करथु, भगवती वाणी  
(सरस्वती) प्रियभक्ति सँ सज्जनक हृदयमे लीला कय प्रकाशित  
होथु, राजाक सभा दुर्जनसभ सँ जनु भरथ ओ ब्राह्मणलोकनि  
सतत आनन्दित रहथु ॥४॥

नारद-(आनन्द पूर्वक) एहिना होअओ ।

(सभ केओ बहार भय गेल ।)



॥ इति रुक्मिणी-परिणये रुक्मिणीहरण-परिणय-प्रदर्शनं  
नाम षष्ठोऽङ्कः ॥

इति श्रीमद् भृगुदेव-कुलोद्भव-सत्कवि-श्रीमान्कृष्णपत्न्युपाध्यायारमजेन,  
महामहोपाध्याय-शङ्करमिश्र-कुलोद्भव-महामहोपाध्याय-  
रतिपतिमित्राऽनूज - सम्मिश्र - धर्मपतिशर्मणो  
दीहिनेन, पल्लोसं० श्रीरमापति-शर्मणा  
विरचितं रुक्मिणी-परिणय - नाटकं  
समाप्तम् ।

रुक्मिणी-परिणय मे रुक्मिणीक हरण ओ विवाहक प्रदर्शन  
नामक छठम अङ्क समाप्त ॥

श्रीमान् भृगुदेवक कुलमे उत्पन्न, कविवर श्रीमान्कृष्णपति उपाध्यायक  
पुत्र, महामहोपाध्याय - शङ्करमिश्रक कुलमे उत्पन्न - म०  
म० रतिपतिमिश्रक छोट भाय-श्रेष्ठ मिश्र  
धर्मपतिशर्माक दीहिने, पल्लिवारकुल-  
संभव श्रीरमापतिशर्माक बना-  
ओल रुक्मिणीपरिणय  
नाटक समाप्त  
भेल ॥



## रमापतिक स्फुट गीत

१---त्रिपुरसुन्दरीक गीत

जय जय विभूषन - सुन्दरि शंकरि, वैर - भयंकरि माया ।  
जवाकुसुम - कुङ्कुम - नूतनरवि, - निन्दक लोहित काया ॥  
मणिमय मुकुट सीस अतिसोभित, नील - वरन<sup>१</sup> कच-पासे ।  
कुटिल अलक बिरचित मुकुटावलि भौंह काम-धनु<sup>२</sup> भासे ॥  
अचर प्रवाल, दसन दालिम-विज, मधुर हास<sup>३</sup> भल छाजे ।  
आनन्दे तोनि विलोल विलोचन, नासा देसरि<sup>४</sup> राजे ॥  
हीरक जटित विमल चामीकर, श्रुति साटक विसाला ।  
मानिके विद्रुमे<sup>५</sup> खचित नखत सम, मंजुल मोतिम माला ॥  
आवा इतु तिलक तह सुन्दर, [पावक<sup>६</sup>] विश्रुत कांती ।  
पास अंकुश धनु वान विभूषित, चारि भूजा भल भांती ॥

१-शंकरि = पत्याणकारिणी त्रिपुर सुन्दरी । वैर भयंकरि = शत्रुक हेतु भया-  
नक । जवाकुसुम --- निन्दक = ओढ़लक फूल, केसर ओ प्रातःकालीन  
सूर्यक छवि के निन्दित करवाला । लोहित काया = लाल देह । नीलवरन  
कचपासे = केश नीला छनि । कुटिल अलक = टेढ़े मेढ़के श मे । कामधन =  
कामदेवक धनुष । प्रवाल = मूडा । दसन = दाँत । नासा = नाक मे । हीरक  
= हीरा सँ । चामीकर = सोनक बनल । श्रुति साटक = कानक गहना ।  
मानिके विद्रुमे = मणि ओ मूडा सँ । नखत सम = तारा जकाँ । इन्दु =  
चन्द्रमा । पावक = अग्नि । कांती = कांति । करिवर कुम्भ - हाथीक  
गस्तक । उरजयुग = दुनू स्तन । अरुन दुकूल = लाल पस्त्र । अमूले =



हरिवर कुम्भ समान उरज युग, पहिरन अरुण दुकूल ।  
किंकिनि कंकने केयुर नेत्र, [भूषण] विमल अमूल ॥  
नख दीविनि गञ्जित रजनीकर, चरण सरोज समाने ।  
मृगमद केसरि अंग विलेपित, भुज परिपूरित पाने ॥  
कमलापति, कमलासन, शंकर, तुअ पद धरय होशाने ।  
सभे अभिमत पूरिअ परमेश्वरि ! प्रवत रमापति भाने ॥

## २---मूला - गीत

बंसी - बट<sup>१</sup> तह लाओल, नन्दकुमार - हिडोल ।  
भानुसुता - हरिसीलित शिशिर अनिल मृदु डोल ॥  
नव धन गरजे सिखर पर<sup>२</sup>, मालति रम रोलम्ब ।  
गगन तिरोहित रवि ससि, कुसुमित कुटज कदम्ब ॥

पञ्चराग मणि मण्डित, इन्द्रनील—युग काँति ॥

ऊपर फटिक - सकल दय, केलि कवल आरम्भ ॥

असुहृद । नख-दीविनि-गञ्जित = नहक प्रकाश सौ तिरस्कृत । रजनीकर =  
चन्द्रमा । सरोज = कमल । मृगमद = करतूरी । कमलापति = विष्णु । कम-  
लासन = ब्रह्मा । अभिमत = अभिलाषा ॥

१—बंशीवट = बड़क गाल जतय कृष्ण बंशी बजयैत छलाह । तह = सैं (वस्तुतः  
'तह' पाठ उचित) । नन्दकुमार हिडोल = कृष्णक मूला । भानुसुता—  
डोल = यमुनाक स्पर्श सैं शीतल बसातक द्वारा मन्द मन्द डोलैत अछि ।  
धन = मेघ । मालति रम रोलम्ब = मालतीफूलक संग भौरा रमण  
करैछ । तिरोहित = श'पाएल । रवि-ससि = सूर्य-चन्द्र । इन्द्रनीलयुग =  
दूइ मोट इन्द्रनील मणिक समान ॥ फटिकसकल = रफटिक पायरक

५—० (अभाव) ।

१—सह । २—गिरिवर । ३—(पाँच पाँतीक लगभग छण्डित ब्रह्मादिक)

सुदिङ्गे<sup>४</sup> वरव<sup>५</sup> चड़ाओल<sup>६</sup>, दइए विमल मध<sup>७</sup> तूल ।  
हाटके पाट सखी संगे, राधा नागरि भूल<sup>८</sup> ॥  
तनु छवि निम्नित चम्पक, मन-भूषण बहुमूल ।  
कनक किनारी राजित, परिहृण नील दुकूल ॥  
पवने<sup>९</sup> उड़ अवगुण्ठन, वेकत होअ मुखकाँति ।  
जनि युग खंजन लागल गगन सरोरुह पाँति ॥  
बहुविधि ललित<sup>१०</sup> हास कय, पञ्चम सरे<sup>११</sup> कर गान ।  
जनि उरवसि परिजन लय, गावति चढ़ल विमान ॥  
सेद विमल परिपूरित, देखि हृदय होअ भान ।  
कनक वेधि<sup>१२</sup> मन गुनि-जनि<sup>१३</sup>, मुकुता फल निरमान ॥  
वदन सुसौरभ उपगत सरस मधुप<sup>१४</sup> संकार ।  
ते<sup>१५</sup> डर<sup>१६</sup> किंकिनि—कलरव हरि - हरि<sup>१७</sup> वचन उचार ॥

दुकड़ा । केलि = विलास, खेल । सुदिङ्गे = मजबूत । मध = कपड़ाक बीच  
मे । तूल = तूर । हाटके पाट = रत्नयुक्त रेशमी वस्त्र पहिरि ॥  
तनु छवि = देहक कान्ति सैं । कनक = सोना । परिहृण = पहिरन  
वस्त्र । दुकूल = साड़ी ॥

पवने = बसात सैं । अवगुण्ठन = घोघट । वेकत = व्यक्त । युग खंजन =  
खंजनक जोड़ी । गगन सरोरुह = आकाश-कमल (मुँहमे) । ललित =  
सुन्दर । सरे = स्वर सैं । उरवसि = उर्वशी अप्सरा । परिजन = परिवार ॥

सेद विमल = स्वच्छ धाम । कनक वेधि = सोनाकें छेवि कय बहार भेला  
मुकुताफल = मोतीक दाना । सुसौरभ = सुगन्ध । उपगत = भेल । मधुप =  
भौरा । किंकिनि कलरव = पायलक शब्द सैं ॥

४ - सुदिङ्ग । ५ - बड़ाओल । ६ - मध । ७ - तूल । ८ - लाल । ९ - पवि ।  
१० - जनु । ११ - रूप । १२ - ते डर कलकिनि-ख । १३ - हर ।



उरसिज भास वेशाकुल, मध्य भांगि १४ जनि जाय ।  
 ते त्रिवली—गुन बान्धल, पुरवहि मदन बनाय ॥  
 एहि अवसर हरि आएल, विसरल सब अभिमान ।  
 सिंह नरेत् भूष बुझ, सुमति रमावति भान ॥

---

उरसिज = स्तनक । मध्य = डोँर । भांगि = दृष्टि । त्रिवली-गुन  
 = पेटक रेखाङ्गी डोरी सौं । पुरवहि = पहिचहि । मदन = कामदेव ।

---

१४—भाग जाने ।

